

मजहरुल हक

आधुनिक भारत के निर्माता

मजहरुल हक

डॉ० कयामुद्दीन अहमद
डॉ० जटाशंकर झा

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

आषाढ़ 1906 ○ जुलाई 1984

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र ○ प्रकाशन विभाग

○ सुपर बजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001

○ कामर्स हाउस, करीम भाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400038

○ 8, एसप्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069

○ एल०एल०ए० आडीटोरियम, 736 अन्नासलै, मद्रास-600002

○ बिहार राज्य सहकारी, बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004

○ निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-695001

○ 10 बी० स्टेशन रोड, लखनऊ-226001

○ स्टेट आर्कियोलोजिकल म्यूजियम बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन, हैदराबाद-500004

प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित

पुस्तकमाला के विषय में

इस पुस्तकमाला का उद्देश्य, वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लिए, भारत के उन स्वनामधन्य पुत्रों और पुत्रियों के संघर्षों और उपलब्धियों की गाथा को लेखबद्ध करना है, जो हमारे राष्ट्रीय पुनर्जागरण और स्वतन्त्रता की प्राप्ति में प्रमुख सहायक सिद्ध हुए हैं। कुछ अपवादों को छोड़कर, ऐसी प्रामाणिक जीवन गाथायें उपलब्ध नहीं हैं।

इन जीवनियों को, विषय की अच्छी जानकारी रखने वाले व्यक्तियों से, सरल भाषा में लिखवा कर छोटी पुस्तकों के रूप में प्रकाशित करने की योजना बनायी गयी है। इनमें लब्धप्रतिष्ठत नेताओं के जीवन और क्रियाकलाप का तथा उनके समय का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। इनका उद्देश्य न तो विस्तृत अध्ययन के लिए सामग्री प्रस्तुत करना है और न अधिक विस्तृत जीवनियों का स्थान लेना है।

इन जीवनियों के लिखने का काम विभिन्न व्यक्तियों को सौंपना पड़ा है। इसलिए जीवनियों को कालक्रमानुसार प्रकाशित करना संभव नहीं हो सका। फिर भी, यह आशा है कि कुछ ही समय के अन्दर, समस्त लब्धप्रतिष्ठत राष्ट्रीय नेताओं की जीवनियां इस पुस्तकमाला में आ जायेंगी।

श्री आर० आर० दिवाकर पुस्तकमाला के प्रधान सम्पादक हैं।

आमुख

मजहरुल हक की जीवनी एक सम्पन्न, पश्चिमी संस्कृति में ढले, सरकारी अधिकारी और बैरिस्टर से एक समर्पित स्वतन्त्रता सेनानी और एक महान् सत्याग्रही के रूप में बदलने का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करती है। यह दिखाती है कि उनका क्रमिक विकास केवल इसी अर्थ में नहीं हुआ कि उनकी गतिविधियों का क्षेत्र विस्तृत होता चला गया, अपितु इस अर्थ में भी हुआ कि राजनीतिक कार्य करने का उनका सामान्य ढंग उच्चकोटि का नैतिक विधान और व्यवहार में बदल गया।

मजहरुल हक की सार्वजनिक गतिविधियां तीन विभिन्न किन्तु परस्पर सम्बद्ध स्तरों पर हुईं—स्थानीय, प्रान्तीय और राष्ट्रीय। उनमें एक संक्षिप्त किन्तु महत्वपूर्ण सर्व-इसलामवादी अध्याय भी था। इन सभी क्षेत्रों में उन्होंने सक्रिय योग दिया। उनका विशेष उल्लेखनीय कार्य था बिहार में राष्ट्रीय विद्यालयों और महाविद्यालयों की स्थापना, जिसके फलस्वरूप प्रसिद्ध सदाकत आश्रम और बिहार विद्यापीठ की स्थापना हुई। एक और महत्वपूर्ण और असाधारण उपलब्धि थी साप्ताहिक 'दी मदरलैण्ड' की स्थापना और उसका सम्पादन। 'दी मदरलैण्ड' का बाद में असहयोग आन्दोलन की 'मुखर-पत्रिका' के रूप में मान्यता मिल गयी।

मजहरुल की राजनीतिक गतिविधियों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी नैतिक और त्याग की ध्वनि थी, जो उन्होंने उन्हें प्रदान की। इस विषय में वे महात्मा गांधी से बहुत प्रभावित हुए थे और इसी के कारण उन्हें 'फकीर' और 'देशभूषण' की लोकप्रिय उपाधि मिलीं, जो ठीक ही थी। 'दी मदरलैण्ड' में 'राजनीति में तपस्या' विषय पर अपने अग्रलेख में उन्होंने लिखा कि राजनीति में तपस्वी, वे महान् आत्मा वाले व्यक्ति हैं, जिन्होंने अपने देश की खातिर अपना सब कुछ त्याग दिया है। जीवन में उनका एकमात्र उद्देश्य है सभ्यता की तुला में

अपनी मातृभूमि को ऊंचा उठाना, उसे विदेशी आक्रमण से मुक्त कराना, उसकी खोयी हुई स्वतन्त्रता को पुन: प्राप्त कराना तथा पृथ्वी के समस्त राष्ट्रों से उसका सम्मान कराना। भारत की पवित्र वेदी पर वे सब-कुछ निछावर करने, सब कुछ चढाने के लिये तैयार रहते है। वे मातृभूमि के चुनिदा है वे देश के चुनिदा हैं। हक स्वयं इस चुनिंदा श्रेणी के थे।

पुस्तकमाला के उद्देश्यो के अनुसार, मजहरुल हक के जीवन और कार्यों का यह संक्षिप्त विवरण केवल सामान्य पाठक के लिए अभिप्रेत है। परन्तु इसमें कुछ नयी जानकारी भी दी गयी है, जो आशा है, अधिक गम्भीर और विशिष्ट श्रेणी के पाठकों के लिए रोचक और लाभदायक होगी।

विस्तार मे न जाकर, इस बात का ध्यान रखा गया है कि अधिकारी, प्रशासक, बैरिस्टर, राजनीतिक नेता, पत्रकार, शिक्षाविद् और आदर्श सत्याग्रही के रूप मे मजहरुल हक के कार्य के सभी विभिन्न पहलुओ को इसमें शामिल किया जाए। इस पुस्तक की तैयारी में, मजहरुल हक पर प्रकाशित संक्षिप्त सामग्री के अलावा, समकालिक सरकारी अभिलेखों का, जिनमें कुछ ऐसे गोपनीय अभिलेख भी थे, जो बिहार सरकार की विशेष अनुमति से देखे गये तथा हक के लेखों का, जो इस समय 'द. मदरलैण्ड' के अत्यन्त दुर्लभ अंकों में उपलब्ध हैं, विस्तार से उपयोग किया गया है।

हम प्रोफेसर एस० एच० अस्करी को हार्दिक धन्यवाद देते हैं, जिन्हे आरंभ मे यह कार्य सौंपा गया और जिनके सुझाव पर बाद में वह हमें दिया गया।

पटना
22 अक्टूबर, 1975

क्यू० अहमद
जे० एस० झा

विषय-सूची

परिवार एवं आरम्भिक जीवन

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, भारत में शांति रही और ब्रिटिश शासन की जड़ें मजबूत हो गयीं। साथ ही, देश के विभिन्न भागों में अनेक ब्रिटिश-विरोधी आन्दोलन और विप्लव भी चलते रहे। इनमें 1857 का विप्लव और वहाबी आन्दोलन प्रमुख है, क्योंकि वे अधिक व्यापक और शक्तिशाली थे। 1857 के विप्लव में बिहार की भूमिका महत्वपूर्ण और सम्मानास्पद[1] थी और उसे भी अधिक महत्वपूर्ण एवं प्रशंसनीय वहाबी आन्दोलन में थी।

वहाबी आन्दोलन[2] जो उन्नीसवीं शताब्दी की पहली तिमाही में भारतीय मुस्लिम समाज के सामाजिक धार्मिक सुधार के लिए शुरू किया गया था, धीरे-धीरे राजनीतिक, अंग्रेज-विरोधी रंग में रंगता चला गया। आन्दोलन के नेता, सैयद अहमद बरेलवी, ने अपने विचारों के प्रचार के लिए पटना को प्रथम संगठन केन्द्र के रूप में चुना। सैयद अहमद बरेलवी ने जो बीज बोया, वह 1831 में उनकी मृत्यु के बाद की अवधि में, तब फलित हुआ जब बिहार ने आन्दोलन में बढ़-चढ़ कर भाग लेना शुरू किया। वस्तुतः 1845 से 1857 तक, पटना ही वहाबी आन्दोलन का मुख्यालय था। विलायत अली और इनायत अली तथा अन्यो ने आन्दोलन की बुझती हुई ज्योति को फिर मे प्रज्वलित किया तथा अपने विचारों के प्रचार के लिए और उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत के आदिवासी क्षेत्रों में अपने ही द्वारा स्थापित स्वतन्त्र राज्य के समर्थन में धन एवं स्वयसेवक इकट्ठे करने के लिए देशभर में केन्द्रों का जाल बिछा दिया।

सन् 1858 से 1863 तक की अवधि मे, सीमा पर वहाबियों और उनके आदिवासी सहायकों के विरुद्ध भारत-सरकार को अनेक सैनिक अभियान दल भेजने पड़े। परिणामस्वरूप, उसका ध्यान बहु-संख्यक वहाबी केन्द्रों की ओर गया, जो 'षड्यन्त्र-नीड़' कहलाते थे और सम्पूर्ण बंगाल

[1] दत्ता के. के. "बायोग्राफी आफ कुंवरसिंह एंड अमरसिंह" पटना 1957

[2] अहमद, क्यू., "दी वहाबी मूवमेंट इन इंडिया", कलकत्ता 1966

प्रान्त एवं देश के अन्य भागों को अपने पंजे मे जकड़े हुए थे तथा सरकार के विरुद्ध संघर्ष के लिए आवश्यक ठोस सहायता पहुंचाते थे। 1864–1871 की अवधि मे, बहुत से वहाबी नेता गिरफ्तार किए गए, उन पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें लबे कठोर कारावास का दंड दिया गया तथा उनकी सम्पत्तियां जब्त कर ली गयीं।

पटना मे, जहां वहाबी लोग सरकार के रोष और अविश्वास के विशेष भाजन बने, सरकार के उत्पीड़न की क्रूरता अधिक सख्त रही। बाद में 1884 में, जब वहाबी अपराधियों को अण्डमान द्वीप-समूह से पटना वापस भेजने के प्रश्न पर विचार हो रहा था तो कुछ उच्च सरकारी अधिकारियों ने राय दी कि उन्हें किसी अन्य स्थान पर बसाना अधिक अच्छा रहेगा, क्योंकि पटना में तो बहुत से लोग उनसे सहानुभूति करेंगे और मुसीबत खड़ी हो जाएगी।

उस समय एक और बड़ी घटना घटी थी। अंग्रेजी शिक्षा के कारण पश्चिमी के राजनीतिक विचारों का प्रभाव बढ़ा। सारे देश के अतिरिक्त बिहार ने इसमें बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। इसके परिणामस्वरूप मध्यम वर्ग में भी अंग्रेजी पढ़ने वालों की संख्या बढ़ गयी और वे सरकारी नौकरियों और अधिक शिक्षा सुविधाओं की मांग करने लगे।

इसी अवधि में, सर सैयद ने भारतीय मुस्लिमों की सामाजिक और शैक्षिक उन्नति के लिए आन्दोलन शुरू किया। वहाबी आन्दोलन की विफलता ने उनके काम को आसान बना दिया, क्योंकि अन्य अनेक पुनर्जागरण आन्दोलनों की भांति यह आन्दोलन भी राजनीतिक रूप से ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध था, यही नहीं, यह पाश्चात्य शिक्षा और प्रौद्योगिकी के बहिष्कार का भी समर्थन करता था। पुनर्जागरण की लहर अवरुद्ध हो गयी थी, इसलिए सर सैयद का तर्क था कि मुस्लिमों को दूसरा मार्ग—पाश्चात्य प्रभावों को आत्मसात् करने और अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने का मार्ग अपनाना चाहिए। इस दिशा में सर सैयद का पहला कदम था 1863 में गाजीपुर में एक विज्ञान समिति (साइंटिफिक सोसाइटी) स्थापित करना (जो बाद में अलीगढ़ स्थानान्तरित कर दी गयी)। समिति का उद्देश्य अंग्रेजी के साहित्यिक एवं वैज्ञानिक महत्व के मानक ग्रन्थों का उर्दू में अनुवाद करना और इस प्रकार उन्हें अधिकाधिक लोगों को उपलब्ध कराना था।

नवजागरण से उत्साहित होकर बिहार के मुस्लिम भी आधुनिकता के मार्ग पर चल पड़े। यह बात ध्यान देने की है कि लगभग इसी समय बिहार में भी ऐसे ही प्रयास हो रहे थे[1]। सर सैयद की भांति सैयद इमदाद अली, प्रिंसिपल सदर अमीन ने उसी उद्देश्य से, मई 1868 में, मुजफ्फरपुर में, बिहार विज्ञान समिति (बिहार साइंटिफिक सोसाइटी) की स्थापना की। अगले वर्ष, मुजफ्फरपुर में ही, एक नयी समिति, 'अंजुमन-ए-तहज़ीब' (सांस्कृतिक संस्था) बनी : इसका उद्देश्य भाषाविज्ञान संबंधी विषयों पर गोष्ठियां आयोजित करना और उदार शिक्षा का प्रचार करना था। बिहार पर सर सैयद के विचारों के प्रभाव का इससे भी अधिक प्रत्यक्ष प्रमाण उस याचिका से मिलता है, जो पटना की मुहम्मडन शिक्षा समिति ने, 1886 में बंगाल के उपराज्यपाल को दी थी। याचिका में कहा गया था कि समिति ने "अलीगढ़ कालेजिएट स्कूल के [illegible] पर एक स्कूल स्थापित किया है।" यह स्कूल 1884 में शुरू हुआ था और 1886 तक इसमें 200 विद्यार्थी हो गये थे, "जिनमें [illegible] सुन्नी, 29 शिया, 26 मोहम्मदी (वहाबी) और 47 हिन्दू थे" [illegible] विश्वविद्यालय प्रवेश-परीक्षा (यूनिवर्सिटी एन्ट्रेंस एक्ज़ामिनेशन) [illegible] तक की शिक्षा दी जाती थी। याचिकादाता 'अलीगढ़ के [illegible]' एक छात्रावास के निर्माण के लिए सरकार से वित्तीय [illegible] चाहते थे। उनका सुझाव था कि यह सहायता वहाबियों की [illegible] से प्राप्त धन से बनाए गए कोष से तथा [illegible] विद्यालय योजना के लिए बनाए गए अप्रयुक्त [illegible] ब्याज से दी जा सकती है।

शिक्षा की उन्नति और राजनीतिक [illegible] के [illegible] एक महत्व-पूर्ण परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजी और [illegible] में अनेक समाचारपत्रों और सामयिक पत्रिकाओं का [illegible] होने लगा।[2] ये समाचारपत्र क्षेत्र के सामान्य पिछड़ेपन, [illegible] सुविधाओं और सरकारी नौकरियों में यहां के [illegible] दिए जाने के

1. "जर्नल आफ हिस्टोरिकल रिसर्च" [illegible]
2. चौधरी, वी० सी० पी०, दी क्रिएशन [illegible] 1964 [illegible]

बारे में बिहार के लोगों की शिकायतों को अभिव्यक्त करते थे। 1871 की जनगणना रिपोर्ट ने जो ताजा सामग्री प्रस्तुत की, उससे ये तथ्य और भी उजागर हुए। उनमें से अधिकांश के लिए प्रशासनिक उपेक्षा को दोषी ठहराया गया। 1854 में एक पृथक् उपराज्यपाल के अधीन बंगाल सरकार के पुनर्गठन के बाद, बिहार एक विशाल प्रशासनिक एकक का अंग बन गया, जिसमें पुराने बंगाल, असम, बिहार और उड़ीसा के प्रान्त थे तथा जिसकी जनसंख्या 7 करोड़ 80 लाख थी। यह विशाल एकक 18वीं शताब्दी के अन्त और 19वीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेजों की विजयों के फलस्वरूप बिना सोचे-समझे तदर्थ रूप से बना दिया गया था। परन्तु, अब यह महसूस हुआ कि बिहार के समुचित विकास के लिए उसका एक पृथक प्रशासनिक एकक बनाना आवश्यक है। शताब्दी के समाप्त होते-होते पृथक बिहार प्रान्त की मांग जोर पकड़ने लगी।

संक्षेप में, 19वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध एक संक्रमण-काल था, ऐसा काल, जिसमें राजनीतिक शक्तियां पुनः मिलकर समान लक्ष्य की ओर बढ़ रही थी। 1857 के विप्लव के शान्त होने के बाद से सरकार भूमिधारी अभिजातवर्ग को सन्देह और वैमनस्य की निगाह से देखने लगी थी; परन्तु शिक्षित, अपनी बात कह सकने वाले, मध्यम वर्ग के आविर्भाव ने उसे अपनी नीति बदलने के लिए बाध्य कर दिया। नया मध्यम वर्ग पश्चिम के राजनीतिक विचारों से ओत-प्रोत था और अधिकाधिक स्वशासन एवं प्रशासनिक सुधारों के लिए आग्रह कर रहा था। इसके प्रतिसंतुलन के रूप में, सरकार को अब भूमिधारी अभिजातवर्ग के प्रति अधिक उदार रुख अपनाना पड़ा।

विप्लव और वहाबी आन्दोलन दब जाने से, आम तौर से विभिन्न भारतीय नरेशों और जमींदारों द्वारा अंग्रेजों के विरुद्ध यत्र-तत्र चलाए जाने वाले सशस्त्र संघर्ष का भी अन्त हो गया। विदेशी शासकों के विरुद्ध नया संघर्ष अब युद्ध-क्षेत्रों में नहीं, सम्मेलनों और परिषद भवनों में चलाया जाने वाला था। नए खेल के नियम भी स्वयं अंग्रेजों ने पश्चिमी राजनीतिक विचारधारा के अनुसार बनाए थे। परन्तु भारतीय शीघ्र ही इस खेल में लग गए; उन्होंने उसके नियमों को समझा और उनमें

प्रवीणता प्राप्त की तथा अधिकतर महात्मा गांधी के मार्ग-दर्शन में अपने भी कुछ नियम उनमें जोड़े और अन्त में अंग्रेजों को उन्ही के खेल में पछाड़ दिया।

बिहार के मुसलमान भी संक्रमण की स्थिति से गुजर रहे थे। 1857 के विद्रोह और वहाबी आन्दोलन के दमन तथा मुस्लिमों द्वारा अंग्रेजी शिक्षा के प्रति दर्शायी गयी सामान्य उपेक्षा के कारण वे पतवार-विहीन जहाज की तरह डगमगा रहे थे। परन्तु सर सैयद के आन्दोलन का प्रभाव बिहार में उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। इस प्रकार बिहार में, लगभग परस्पर-विरोधी दो प्रवृत्तियां थी—'एक ओर हिंसक प्रतिक्रिया और प्रत्येक पश्चिमी वस्तु का पूर्ण बहिष्कार था, तो दूसरी ओर एक शक्तिशाली पुनर्जागरण आन्दोलन था, जो पाश्चात्य प्रभाव को आत्मसात करने पर जोर देता था।[1] ये परिस्थितियां थी, जिनमें मजहरुल हक ने अपना आरंभिक, संस्कारग्राही, जीवन बिताया।

मजहरुल हक शेख अहमदुल्ला के इकलौते बेटे थे। उनका जन्म पटना से 25 किलोमीटर पश्चिम ग्राम बाहपुरा में जमींदारों और नील-उत्पादकों के एक प्रतिष्ठित मध्यमवर्गीय परिवार में,, 22 दिसम्बर, 1866 को हुआ था।

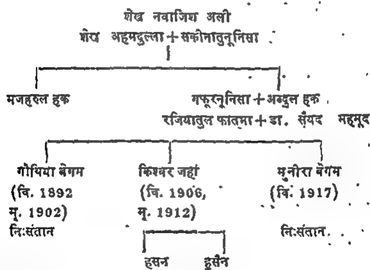
यह परिवार मूल रूप से मुजफ्फरपुर जिले में दाऊदनगर का रहने वाला था; परन्तु बाहपुरा चला आया था, जहां हक के परदादा (प्रपितामह) की ससुराल थी। उनके पितामह शेख अहमदुल्ला की एक छोटी जमींदारी थी तथा आस-पास उनका बड़ा आदर था। उनके पितामह के भाई, काजी रमजान अली, सारन जिले के मशहूर नील-उत्पादक थे तथा मृत्यु के समय वे 13 नील-कारखानों के मालिक थे, जो अच्छी चालू हालत में थे।

परन्तु साथ ही, एक भिन्न प्रकार की पारिवारिक पृष्ठभूमि भी थी, हक के कुछ रिश्तेदार वहाबी थे। बाहपुरा के समीप ही येहदावन गांव

1. आर० आर० दिवाकर (स) "बिहार थ्रू दी एजिज" 1951 पृ० 676

में वहाबियों का एक मशहूर परिवार रहता था। पटना का वहाबी नेता अहमदुल्ला, जिसपर 1865 में 'ब्रिटिश साम्राज्य' के विरुद्ध युद्ध छेड़ने के अपराध में सहायता देने के कारण मुकदमा चलाया गया था और जिसे कालेपानी की सजा दी गयी थी, मूल रूप से मेहदावन का रहनेवाला था। अंदमान में 16 वर्ष से अधिक समय तक कठोर कारावास का दंड भुगत कर, 1881 में वह मर गया था। यह समाचार धीरे-धीरे चलता हुआ कभी घर भी पहुंचा होगा और उसने कदाचित युवक हक के मन पर प्रभाव डाला होगा। इसके अतिरिक्त, हक के पितामह के एक भाई काजी फर्जन्द अली ने, सारन जिले में, 1857 के विद्रोह में भाग लिया था।

हक के नजदीकी पूर्वजों और उनकी सन्तान की संक्षिप्त वंशावली[1] नीचे दी जा रही है :—



[1] इस जानकारी के लिए हम डा० यूसुफ खुर्शीदी, प्राध्यापक, उर्दू विभाग, पटना विश्वविद्यालय के आभारी हैं।

मौलवी सज्जाद हुसैन के आचार्यत्व में अरबी और फारसी की परम्परागत प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद हक को स्कूल में भर्ती किया गया । उन्हे छात्रवृत्ति मिलती थी और वर्नाक्यूलर (मिडिल) परीक्षा उन्होने 1874 में पास की । इसके बाद वे पटना कालेजियेट स्कूल में भर्ती हुए । परन्तु अपने माता-पिता को बिना बताए अथवा उनकी अनुमति लिए बिना ही घर से चले जाने के कारण उनकी पढ़ाई बीच में ही रुक गई । वे घर लौट आए और फिर पढ़ाई में लग गए । कदाचित् यही कारण है जिससे इतनी बड़ी (बीस वर्ष की) आयु में 1886 में उन्होंने मैट्रिक्युलेशन परीक्षा पास की । उसी वर्ष वे पटना कालेज में भर्ती हुए परन्तु अपने स्वतंत्र एवं चंचल स्वभाव के कारण शीघ्र ही एक अध्यापक से उनका झगडा हो गया जिससे उन्हें कालेज छोडना पड़ा । इसके बाद वे लखनऊ के कैनिंग कालेज में भर्ती हुए परन्तु वहां भी वे अपने माता-पिता को बिना बताए घर से निकल गए । इस बार वे अधिक साहसिक यात्रा पर निकले थे । मई 1888 मे केवल 70 रु० अपने साथ लेकर वे किसी प्रकार एक तीर्थयात्री (हज) जहाज पर सवार हो गए । वे अदन में फंस गए और तीन महीने तक चिन्तापूर्ण प्रतीक्षा करते रहने के बाद उन्हें अपने स्नेह मे पागल हुए पिता से कुछ रुपया मिला जिसे जुटाने के लिए पिता को अपनी ज़मीदारी के एक गांव रामपुर को गिरवी रखना पड़ा था । सितम्बर मे इंग्लैंड पहुंचने के बाद हक शीघ्र ही कानून के अध्ययन मे लग गए ।

इंग्लैण्ड[1] मे हक महात्मा गाधी और सर अली इमाम के सम्पर्क में आए । इस आरम्भिक अवस्था मे भी हक पर महात्मा गाधी का बहुत प्रभाव पड़ा । दोनों ही कानून की पढ़ाई कर रहे थे और दोनो के ही कुछ समान हित थे । अली इमाम के साथ हक का सम्पर्क बढ़ते-बढ़ते मित्रता मे बदल गया जो उनके घर लौटने पर और भी गाढ़ी हो गई । बाद के वर्षों मे दोनो ने बिहार के मुस्लिमों को बिहार प्रान्तीय सम्मेलन (बिहार प्रोविंशियल कान्फ्रेंस) के क्रियाकलाप से सम्बन्धित करने में प्रमुख भाग लिया ।

---

1 हक ने इंग्लैंड से अपने पिता को जो पत्र लिखे, उनसे वहा उनके अवस्थान और अध्ययन के बारे में अत्यन्त रोचक जानकारी मिलती है । देखिए सिद्दीकुर्रहमान (स), "मकातिब-ए-मौलाना मजहरुल हक, "दिल्ली, 1965 इससे उनमें 141 पत्र हैं

उस समय इंग्लैण्ड में पढ़ने वाले बहुसंख्यक भारतीय मुसलिम छात्रों में सम्पर्क स्थापित करने तथा सामूहिक गतिविधियां चलाने के लिए हक ने 'अंजुमन-ए-इसलामिया' नाम की एक संस्था बनाई। यह संस्था एक साम्प्रदायिक संगठन न थी। सच्चिदानन्द सिन्हा[1] जो इंग्लैंड में हक के समकालीन थे और जिन्होंने अंजुमन की कुछ बैठकों में भाग लिया था लिखते हैं कि 'यद्यपि प्रत्यक्षतः यह मुस्लिमों के लिए बनाई गई थी फिर भी वर्षों तक यह मुस्लिम और गैर-मुस्लिम भारतीयों के लिए मनचाही मिलन-स्थली बनी रही। हक इसके प्रथम सचिव थे।

कानून के साथ-साथ हक वक्तृत्व कला का भी अध्ययन करते थे। वे शेक्सपियर और शेरिडन के प्रसिद्ध दृश्यों का आश्चर्यजनक ढंग से अवतरण कर सकते थे। यह प्रशिक्षण शायद उन्होंने हसन इमाम के साथ लिया था जो उस समय इग्लैंड में ही थे और वक्तृत्व कला में भी उतने ही निपुण थे। इसी अवधि में हक ने फ्रांसीसी भाषा भी सीखी थी। 1891 में वे बैरिस्टर बने। वे उसी वर्ष घर लौटे और पटना में प्रैक्टिस करने लगे। अगले वर्ष उन्होंने उत्तर प्रदेश में खरसन्ती गांव के हाफ़िज़ अब्दुल समद की पुत्री गोथिया बेगम से शादी की जो 1902 में निःसन्तान ही मर गई। 1906 में उन्होंने अपनी एक रिश्तेदार किश्वर जहां से शादी की जिससे दो पुत्र पैदा हुए—हसन और हुसैन। 1912 में उसकी मृत्यु के बाद 1917 में उन्होंने बदरुद्दीन तैयबजी की एक भतीजी मुनीरा बेगम से शादी कर ली। मुनीरा बेगम बम्बई में[2] रहती हैं। उसके पास विभिन्न व्यक्तियों द्वारा हक को लिखे गए पत्रों का संग्रह है।

पटना में प्रैक्टिस शुरू करने के कुछ ही वर्षों बाद हक को उत्तर प्रदेश न्यायिक सेवा में मुंसिफ़ नियुक्त किया गया। परन्तु यह पद उनकी प्रकृति के अनुकूल न था तथा अधिकारियों के साथ उनके सम्बन्धों में अकसर तनाव आ जाता था। बताया जाता है कि एक बार एक अंग्रेज जुडिशियल कमिश्नर ने उनसे "भूरे शिकारी कुत्तों का एक जोड़ा मांगा, परन्तु हक ने साफ़-साफ़ मना कर दिया[3]" और कहा कि जो अधिकारी

[1] सिन्हा एस०, "सम एमिनेंट बिहार कन्टेम्परेरीज," पटना 1944 पृष्ठ 76–77
[2] हाल ही में उनकी मृत्यु हो चुकी है।
[3] आर्थ, एम० आर० दी मैनेज आफ आमियाना", 1962 पृ० 7

कुत्ता मांगता है वह भविष्य में कुछ भी मांग सकता है। इसके बाद उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। इस कहानी में कितनी सचाई है यह तो पता नही परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उनके त्यागपत्र का असली कारण नौकरी का उनके स्वभाव के अनुकूल न होना तथा प्रियजन के वियोग से शोकसन्तप्त रहना था। लगभग इसी समय हक की इकलौती बहिन के पति अब्दुल हक की जो सारन जिले में ग्राम अन्दार के जमीदार थे, मृत्यु हो गई। हक, जो अपनी बहिन को बहुत प्यार करते थे इस घटना से बहुत दुःखी हुए। 1896 मे नौकरी छोड़ कर उसके पास रहने के इरादे से वे अन्दार चले गए और जिले के मुख्यालय छपरा में प्रैक्टिस करने लगे।

1897 में जिले मे अकाल पड़ा जिसके लिए हक ने सहायता कार्य आयोजित किया और धर्मार्थ सहायता कोष बनाया जिसके वे ही सचिव थे। 1903 मे वे सारन नगरपालिका के उपाध्यक्ष चुने गए; उस समय अध्यक्ष पद पर आमतौर से कलक्टर रखे जाते थे। हक लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण मे अधिक विश्वास करते थे। वे लोगों को अपने झगड़े सरकारी न्यायालयों से बाहर तय करने की सलाह दिया करते थे। इसकी प्रेरणा नि.सन्देह उन्हें वहाबियों के उदाहरण से मिली थी। स्थानीय निकायों मे गैर-सरकारी लोगो को अधिक प्रतिनिधित्व देने का समर्थन करते हुए, वे यह तर्क देते थे कि भूमि पुत्रों का प्रतिनिधित्व बढ़ाना चाहिए तथा उत्पादको (मालिको) का उनकी संख्या और हित के अनुपात के अनुसार घटा देना चाहिए। अपने कार्यकाल (1903–1906) में उन्होंने नगर-पालिका की वित्तीय स्थिति में पर्याप्त सुधार किया। उपाध्यक्ष के रुप में उन्होंने जो कार्य किया वह यद्यपि उनके बाद के राजनीतिक कार्यों के आवरण में ढक गया फिर भी वह वास्तविक उपलब्धि वाला कार्य था। लगभग इसी समय, उन्होने अन्दार के समीप परीदपुर गांव में कुछ जमीन खरीदी, एक बड़ा बाग लगाया और एक बंगला बनवाया। इसी बंगले, "आशियाना" (नीड़) मे उन्होने 1923 में सक्रिय राजनीति से संन्यास लेकर अपने जीवन के अन्तिम सात साल बिताए।

1908 के आरम्भ मे, हक पुनः पटना चले गए और वहां प्रैक्टिस शुरू कर दी। वे जिला जेल के समीप, फ्रेजर रोड पर (जिसका नाम अब

मजहरुल हक पथ है), एक मकान में रहने लगे; परन्तु बाद में, उसी सड़क पर उत्तर की ओर स्थित एक दूसरे मकान 'सिकन्दर मंजिल' में चले गए। इसी के साथ, हक ने अपने राजनीतिक जीवन के सक्रिय एवं अधिक व्यापक क्षेत्र में पदार्पण किया। यह काल बिहार के ही नहीं, देश के इतिहास का भी एक हलचलभरा और घटनापूर्ण काल था। बिहार को पृथक प्रान्त बनाने की मांग जोर पकड़ रही थी। बाद में शीघ्र ही, महत्वपूर्ण मार्ले-मिन्टो सुधारों ने राजनीतिक चेतना वाले लोगों का ध्यान अपनी ओर खींच लिया। इसी काल में (1905 में) बंगाल प्रान्त का विभाजन हुआ और इसी काल में (1906 में) अखिल भारतीय मुस्लिम लीग बनी, जो भारतीय मुसलमानों में बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना की प्रतीक थी, परन्तु जिसमें पृथकतावादी भावनाओं की अन्तर्धारा भी थी। हक की आरंभिक राजनीतिक गतिविधियां इन्हीं समस्याओं के इर्द-गिर्द केन्द्रित थीं।

यह कहा गया है कि 1858 से 1898 तक सैयद अहमद खां एक ऐसी धुरी बने रहे, जिसके चारों ओर मुस्लिम राजनीति चक्कर लगाती रही। उनका मत था कि एकमात्र शिक्षा ही भारतीय मुसलमानों की समस्त व्याधियों—राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक की रामबाण औषधि थी। उनका विश्वास था कि "शिक्षा राजनीतिक स्वतन्त्रता से भी अधिक आवश्यक है। शिक्षा के बिना, राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर भी कायम नहीं रह सकती।" इसलिए अपने जीवन के आरम्भिक भाग में उन्होंने अपना ध्यान इसी क्षेत्र पर केन्द्रित किया और भारतीय मुसलमानों को राजनीति से अलग रहने की सलाह दी। फिर भी, उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विकास एवं निर्वाचित संस्थाओं के शुभारंभ के साथ, मुसलमानों को राजनीतिक रूप से संगठित करने के लिए कुछ प्रयत्न किए गए। दुर्भाग्य से उन प्रयत्नों ने राजनीतिक पृथकतावाद का रूप ले लिया और वे सर सैयद की मृत्यु के बाद भी जारी रहे। अक्तूबर 1906 में, मुसलमानों का एक प्रतिनिधिमंडल वाइसराय से शिमला में मिला और उसने अपनी कुछ मांगें रखीं, जिनमें पृथक् निर्वाचक की महत्वपूर्ण मांग भी थी।

इन्हीं परिस्थितियों में, मुस्लिम हितों की रक्षा के लिए, एक अखिल भारतीय राजनीतिक दल बनाने के उद्देश्य से, दिसम्बर 1906 में, ढाका में, मुस्लिम नेताओं की एक आम सभा बुलाई गई। अन्यों के साथ-साथ हक और अली इमाम ने भी ढाका की सभा मे भाग लिया जैसा कि सच्चिदानन्द सिन्हा ने कहा है, "वे प्रस्तावित सस्था की पृष्ठभूमि में डालने और उसके स्थान पर अखिल भारतीय मुस्लिम लीग, जिसके लक्ष्य और उद्देश्य उन लक्ष्यो और उद्देश्यों से सर्वथा भिन्न थे, जो मूल रूप से प्रस्तावित किए गए थे"[1] स्थापित करने में सफल हो गए। सभा ने संकल्प किया कि "भारत के मुसलमानों के राजनीतिक अधिकारों और हितों की रक्षा एव संवर्धन के लिए" तथा "भारत के मुसलमानों मे अन्य समुदायो के प्रति वैमनस्य की भावना को रोकने के लिए" "आल इंडिया मुस्लिम लीग नाम की एक राजनीतिक सस्था बनाई जाए"[2]। मुस्लिम लीग के सस्थापक-सचिवो मे हक एक थे। उन्होंने बिहार मे भी उसका गठन किया और कुछ समय तक उसके प्रान्तीय सचिव रहे। 1915 मे वे मुस्लिम लीग और कुछ समय तक उसके प्रान्तीय सचिव रहें। 1915 में, वे मुस्लिम लीग के बम्बई अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए। आरंभिक वर्षों में लीग के उद्देश्य और कार्य उनसे भिन्न थे, जो बाद के वर्षों मे उन जैसे ही हो गए और, जैसा कि सच्चिदानन्द सिन्हा ने कहा है हक ने शिशु सस्था को बडी सावधानी से स्वास्थ्यकर विधि से 'पाला-पोसा'।

हिन्दू और मुसलमान दोनो सम्प्रदायों को साथ-साथ राजनीतिक क्षेत्र में उतारने के लिए हक ने आरभ में जो प्रयत्न किए उनमें बिहार प्रान्तीय सम्मेलन (बिहार प्राविंशियल कान्फ्रेंस) में उनकी भूमिका विशिष्ट थी। बिहार प्रान्तीय कांग्रेस समिति द्वारा प्रायोजित बिहार प्रान्तीय सम्मेलन बिहार के हितों, विशेष रूप से पृथक प्रान्त की मांग, को आगे बढ़ाने मे लगा हुआ था। हक आरम्भ से ही इससे घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध थे तथा इसके प्रधान सचिव (1908) और उपाध्यक्ष (1909) रह चुके थे। यह पृथक प्रान्त की माग के लिए एक संयुक्त हिन्दू मुस्लिम राजनीतिक

1 सिन्हा, पूर्वोक्त पुस्तक, पृ 78
2 नोमैन, एम०, "मुस्लिम इंडिया", इलाहाबाद, पृ 78

मोर्चा तैयार करने मे काफी सफल रहा । सच्चिदानन्द सिन्हा ने जो एक समकालीन थे और पृथक प्रान्त के रूप में बिहार के संविधान के मुख्य निर्माताओं में थे इस घटना के महत्व का वर्णन इस प्रकार किया है : "हमने एक नया मोर्चा बनाया, जिसमें बिहारी मुसलमान को भी उतना ही प्रमुख और सामान्य पार्ट अदा करना था, जितना उसके समदेशी हिन्दुओं ने विगत वर्षों में अदा किया था।[1]" इस विषय के एक अन्य लेखक ने भी इस घटना के महत्व पर टिप्पणी की है : "मुस्लिम नेताओं के इस (बिहार प्रान्तीय सम्मेलन) के साथ सम्बद्ध हो जाने से संघर्ष एक कदम और आगे बढ़ा-- नेतृत्व के मामले में अब उसका आधार विस्तृत हो गया था।"[2]

इस नयी सहयोग-सन्धि के बाद, बिहार प्रान्तीय सम्मेलन का प्रथम महाधिवेशन, अप्रैल 1908 मे, अली इमाम की अध्यक्षता में हुआ। बिहार को पृथक प्रान्त बनाने के लिए एम० फखरुद्दीन ने एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जिसका सभी जिला-प्रतिनिधियों ने समर्थन किया। हक ने भी सुधारों के लिए एक प्रस्ताव रखा, जिसमें उन्होंने पृथक निर्वाचक मंडल संबंधी प्रस्तावों की आलोचना की। आगामी अगस्त मे, बिहार की तीनों सार्वजनिक संस्थाओं–बिहार भूमिधर संघ, बिहार प्रान्तीय सम्मेलन और बिहार प्रान्तीय मुस्लिम लीग–ने एक संयुक्त शिष्टमंडल उपराज्यपाल के पास भेजा, जिसने बिहार की शिकायतों के संबंध मे एक ज्ञापन दिया। यह ज्ञापन इस दृष्टि से अद्वितीय और विशिष्ट था कि 'यह किसी विशेष समुदाय, जाति, वर्ग या सम्प्रदाय की ओर से न था, बल्कि बिहार के समस्त जन समूह के विचारों और भावों को विनम्रता एवं भक्तिभाव से प्रस्तुत करता था। और इसीलिए यह आशा की गयी थी कि "किसी एक जाति, वर्ग या सम्प्रदाय के विचारों की तुलना में हमारे विचारों का अभिव्यक्ति का वजन स्वभावतः बहुत अधिक बढ़ जाएगा।

हक नवम्बर 1911 में पटना में आयोजित बिहार प्रान्तीय सम्मेलन के तृतीय अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण

[1] सिन्हा, एस पूर्वोक्त पुस्तक पृ 24

[2] चौधरी, पूर्वोक्त पुस्तक पृ 99

लूट' में मुसलमानों का हिस्सा कानूनों से तय नहीं होगा, अपितु राष्ट्रीय संघर्ष में उनके हिस्से के अनुपात में मिलेगा।

शिक्षा में पिछड़ापन

हक ने प्रान्त में शिक्षा की स्थिति पर भी विचार किया और उसकी कमियों को उजागर किया। उन्होंने इस बात पर दुःख प्रकट किया कि समस्त प्रान्त में, जिसकी आबादी 3 करोड़ थी, केवल एक सरकारी कालेज था, और वह भी आदर्श कालेज न था। प्रवेश सीमित था और 'होनहार युवकों', को उच्च शिक्षा के अवसरों से वंचित रहना पड़ता था। इससे भी अधिक, शिक्षा-शुल्क (फीस) बढ़ाने का प्रस्ताव था, जिससे छात्रों की संख्या और भी घटने की संभावना थी। कुछ दिनों से एम० ए० के छात्रों को इतिहास और अर्थशास्त्र भी पढ़ाए जाने लगे थे, परन्तु इतना ही पर्याप्त न था। 'वास्तव में हम यह चाहते हैं कि पटना कालेज को प्रथम श्रेणी का आवासी कालेज बना दिया जाए, जिसमें विद्या की सभी महत्वपूर्ण शाखाओं के लिए अध्यापक पद हों।' उन्होंने सीनेट में बिहार के लोगों को कम प्रतिनिधित्व दिए जाने की भी निन्दा की, जो 'सौ में केवल तीन' था। इसे बढ़ाने की आवश्यकता थी, ताकि प्रान्त को शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं पर अधिक ध्यान दिया जा सके। तकनीकी शिक्षा पर विचार करते समय हक को पता चला कि 'उसकी स्थिति भी बेहतर न थी'। बिहार स्कूल आफ इंजीनियरिंग तथा टेम्पिल मेडिकल स्कूल अब भी स्कूल ही थे और कालेज नहीं बनाए गए थे। सरकार तकनीकी शिक्षा के लिए बंगाल को तो 'प्रचुरता से' और 'उदारता से' सुविधाएं दे रही थी, पर बिहार को नहीं देती थी। तीन निजी कालेजों को, जिनकी स्थिति शोचनीय थी, सरकारी अनुदान अत्यल्प एवं अपर्याप्त था। हक ने गोखले के प्राथमिक शिक्षा विधेयक का डट कर समर्थन किया। उन्होंने विधेयक को अति महत्वपूर्ण बताते हुए कहा कि 'इसका प्रभाव इतना दूरगामी होगा कि हमारी मातृभूमि का भाग्य ही बदल जाएगा। जनता के अज्ञान पर रोना आता था और उस समय की सबसे अधिक महत्वपूर्ण एक समस्या यह थी कि उनमें थोड़े भी ज्ञान का संचार कैसे किया जाए।' उन्होंने सुझाव दिया कि योजना को लोकप्रिय बनाने, लोगों को अपने बच्चों को स्कूल में

पढ़ने के लिए भेजने को प्रेरित करने तथा उन्हें परामर्श और धन की सहायता देने के लिए, अन्य प्रान्तो में बने सघो के समान प्रार्थमिक शिक्षा संघ बनाए जायें। परन्तु उन्होंने लोगों को चेतावनी दी कि वे पंजाब की नकल न करें, जहा हिन्दू शिक्षा सघ और मुस्लिम शिक्षा संघ बनाए गए थे। उन्होंने कहा कि 'ऐसा करना घातक होगा।'

नौकरी आदि के संबंध में शिकायतें

नौकरी आदि के सम्बन्ध में विविध शिकायतो पर बोलते हुए हक ने माग की कि सार्वजनिक सेवाओं मे बिहार के लोगों को अधिक हिस्सा दिया जाए। हक ने कहा कि अप्रैल 1908 में बंगाल के उपराज्यपाल सर ऐ.डू. फ्रेजर ने स्वीकार किया था कि वर्तमान स्थिति बिहार के लिए 'अन्यायपूर्ण' और हानिकारक है तथा इस बात पर बल दिया था कि बिहार को ऐसी सार्वजनिक सेवा प्रदान करने की आवश्यकता है, जिसमे अधिकतर प्रान्त के ही लोग हो। यह सच है कि केवल बिहारी होने से हो कोई नौकरी के लिए दावा नही कर सकता था उसमें अन्य योग्यताए भी होनी चाहिए थी। परन्तु, सर ऐंड्र्‌ का कहना था कि बिहारी होना भी ऐसा दावा है, जिसे उपेक्षित नही किया जा सकता····'यदि कोई व्यक्ति देशी भाषा बोलता है तो वह अधिक अच्छा न्यायाधीश होता है, अधिक अच्छा कार्यपालिका अधिकारी होता है और अधिक अच्छा स्कूल-मास्टर भी होता है।' हक ने कहा कि उपराज्यपाल के प्रशंसनीय उदगारों को कार्यान्वित नही किया गया। 'प्रशासन के उच्चतम स्थानों' पर नियुक्तियों की भी स्थिति असन्तोषजनक थी। उच्च न्यायालय के एकमात्र न्यायाधीश (शर्फुद्दीन) को छोड़कर, कोई बिहारी 'सम्मान के ऊंचे पद' पर नियुक्त नही किया गया। उच्च न्यायालय अधिनियम तभी पास हुआ था और कलकत्ता उच्च न्यायालय मे न्यायाधीशों को सख्या बढ़ाई जाने वाली थी। यह उचित था कि किसी बिहारी को 'विशेषरूप से हिन्दू को नियुक्त किया जाता, क्योंकि उच्च न्यायालय की पीठ पर एक बिहारी मुसलमान पहले से ही था'।

यह दिखाने के लिए कि बिहार के समस्त जिलो मे 'सभी भयंकर रोगो के रोगियो की संख्या सर्वाधिक थी और केवल चेचक ही ऐसा रोग

था, जिसमें उनका स्थान दूसरा था' हक ने सेनिटरी कमिश्नर की रिपोर्ट से विस्तृत उद्धरण दिए। शाहाबाद, जिसकी जलवायु प्रान्त में सर्वाधिक स्वास्थ्यवर्धक थी, भी अधिक मलेरियाग्रस्त स्थान होने की प्रसिद्धि पा गया था। इस सबके लिए उन्होंने बिहार के प्रति सरकार के कृपणतापूर्ण रुख को दोषी ठहराया।

बंगाल का विभाजन और बिहार प्रान्त

हक बंगाल-विभाजन के 'अत्युद्वेजक' और 'विवादास्पद' विषय पर भी विस्तार से बोले। विभाजन के विषय में बिहारियों की भावना और रुख, बंगालियों की भावना और रुख से मेल नहीं खाता था: वस्तुतः ये देश में विद्यमान सामान्य राजनीतिक भावना के विरुद्ध था। बिहारी लोग विभाजन को पृथक प्रान्त के अपने अभीष्ट लक्ष्य की ओर बढ़ा हुआ कदम समझते थे। बंगाल के पुनर्गठित प्रान्त में, अपने क्षेत्रफल और जनसंख्या के कारण, बिहार की स्थिति कुछ अधिक महत्वपूर्ण हो गई थी। पूर्ण पृथक्करण की ओर आधा मार्ग तय हो चुका था। इसलिए, हक 'वर्तमान व्यवस्था' को 'पुराने, बेढंगे, बोझिल प्रशासन' की तुलना में अधिक अच्छा समझते थे। हक को इस प्रश्न पर बंगालियों की भावनाओं से कुछ सहानुभूति थी। परन्तु उन्होंने उन्हें बताया कि 'नए हित' अस्तित्व में आ गए हैं और व्यावहारिक राजनीति का तकाजा है कि इन हितों की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। हक विभाजन रद्द करने के विरोधी थे परन्तु उसमें सुधार किया जा सकता था। सुधार के विषय में उनका ख्याल था कि 1906 में[1] सच्चिदानन्द सिन्हा और महेश नारायण द्वारा तैयार की गई पुस्तिका में इसके लिए एक अच्छा और व्यावहारिक तरीका सुझाया गया है। हक ने संक्षेप में अन्तिम लक्ष्य इस प्रकार बताया : "हम न तो पहली स्थिति में जाना चाहते हैं और न विभाजन को रद्द करना चाहते हैं।.... हम तो व्यवस्थापिका और कार्यपालिका परिषदों, एक उच्च न्यायालय और एक विश्वविद्यालय सहित पूर्ण पृथक्करण चाहते हैं।"

यह सब होते हुए भी, हक एक अतिराष्ट्रीयतावादी क्षेत्रीय नेता न थे। बंगाल से अपने सम्पर्क, विशेषरूप से उसकी 'जागृति' के कारण,

1 देखिए चौधरी, पूर्वोक्त पुस्तक पृ 176

विहार को जो 'अगणित लाभ' मिले, उन्हें वे स्वीकार करते थे और उनकी सराहना करते थे। उन्होंने उन बंगाली भाइयों से भी जो पीढ़ियों से विहार में रह रहे थे, कहा कि वे अपने को विहार प्रान्तीय सम्मेलन की गतिविधियों से अलग न करें।

यह बताना आवश्यक है कि देश के उस समय के अधिकाश राज-नीतिक नेताओं की भांति हक 'राजभक्तिवादी" (लायलिस्ट) थे। राजा जार्ज पंचम की भारत को शाही यात्रा के अवसर पर, उन्होने विहार की जनता की ओर से, उनका राजभक्तिपूर्ण स्वागत किया था। यह अद्वितीय सम्मान था, 'इससे पहले कभी किसी ब्रिटिश सम्राट ने अपने समुद्रपारीय उपनिवेशों की यात्रा नही की थी।' हक समझते थे कि 'सर्वज्ञ परमात्मा ने हमारे भाग्य-नक्षत्र को ग्रेट ब्रिटेन के भाग्य नक्षत्र से जोड़ दिया है और यदि हम इस भाग्यशाली एव अनुकूल ग्रह-योग से लाभ न उठायेंगे तो दोष हमारा ही होगा और पीछे पछताना पड़ेगा, जो वास्तव मे दुःखदायी होगा।' वे यह नही चाहते थे कि ब्रिटिश शासन समाप्त हो जाए, बल्कि यह चाहते थे कि कुछ ऐसे सुधार हों, जिनसे अधिक उत्तरदायी स्वशासन प्राप्त हो।

इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में

16 दिसम्बर, 1909 को, मजहरुल हक बगाल प्रान्त के एक मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्र से भारत के गवर्नर जनरल की लेजिस्लेटिव कौंसिल (विधान-परिषद) के लिए गैर-सरकारी सदस्य चुने गये । परिषद के गैर-सरकारी सदस्य के कर्तव्यों के बारे में उनके कुछ निश्चित विचार थे। उनका कहना था कि गैर-सरकारी सदस्य का काम "सरकार को परेशान करना या उसके कार्यों में बाधा लाना नहीं, अपितु: जनता के विचारों, धारणाओं और भावनाओं को उसे बताना, सलाह देना और हार्दिक एव सच्चा सहयोग प्रदान करना है।" सदस्य सरकारी प्रस्तावों का बखूबी विरोध कर सकता है, परन्तु ऐसा करने समय उससे सदन की मर्यादा की रक्षा की आशा की जाती है। कुछ कानून जनता के प्रतिनिधि के रूप में तथा आवश्यकता पड़ने पर व्यक्तिगत रूप में भी उसे अपने विचार स्वतन्त्रतापूर्वक प्रकट करने चाहिए। परन्तु मजहरुल चाहते थे कि ऐसा करते समय उसे इस अन्तर को, भली-भांति स्पष्ट कर देना चाहिए। अपने आलोचकों को, जो यह कहते थे कि कौंसिल के सदस्य को अपने निर्वाचक मंडल के विचारों तक ही अपने को सीमित रखना चाहिए, उत्तर देते हुए, उन्होंने कहा, "ऐसा करना परिषद के मान्य सदस्यों को उनके होठों पर 'हिज मेजस्टीज वाइस' का प्रसिद्ध ट्रेड मार्क लगा कर मात्र ग्रामोफोन की मशीनें बना देना होगा अथवा जिन्हें एडमंड बर्क 'स्थानीय एजेंट' कहते थे उनकी स्थिति में ला देना होगा। यदि किसी चुनाव में यह सिद्धांत लागू किया गया तो लेशमात्र भी स्वाभिमान रखनेवाला ऐसा कोई व्यक्ति मिलना असम्भव हो जायेगा, जो सामने आये और किसी प्रतिनिधिमूलक असेम्बली के लिए निर्वाचित होने के लिए तैयार हो जाये। मैं स्वयं विचार की स्वतन्त्रता, भाषण की

स्वतंत्रता में विश्वास करता हूं। चाहे मेरे माननीय मित्र उनका के लिए मुझे क्षमा करें जो मैं कहूंगा कि वे इस परिषद के अनुरूप और योग्य सदस्य हैं तथा उन्हें यह अधिकार है कि उनकी बात आदर और प्रशंसा के साथ सुनी जाय। मैं ऐसा कोई कारण नहीं देखता, जिससे इस परिषद में किसी जन-प्रतिनिधि को अपने विचार प्रकट करने से केवल इसलिए रोका जाये कि वह अपने निर्वाचकों के विचारों को अभिव्यक्त नहीं करता।"[1]

सामाजिक विषयों पर उनके विचार प्रायः उनके निर्वाचकों के विचारों से भिन्न होते थे। उन्होंने भूपेन्द्रनाथ बसु के 'विशेष विवाह विधेयक' का समर्थन किया, जिसके लिए उनके कुछ समर्थकों ने उनकी कटु आलोचना की। परन्तु उनमें आत्मविश्वास का बल था, इसलिए अन्तः साम्प्रदायिक विवाह के पक्ष में अपने तर्क प्रस्तुत करने के बाद, उन्होंने कहा "मुझे विश्वास है कि मैंने अपने विचार इतनी ईमानदारी से व्यक्त किये हैं जितनी से कर सकता था। परन्तु अपने बचाव के लिए मैं पुनः कहूंगा कि ये मेरे व्यक्तिगत विचार हैं। साथ ही, मैं भी मज्मुल हुदा की इस बात से सहमत नहीं हूं कि मुझे परिषद में अपने स्थान से इसलिए त्यागपत्र दे देना चाहिए, क्योंकि मैं किसी विशेष मुद्दे पर अपने सम्प्रदाय से भिन्न मत रखता हूं। मेरा अपना अलग व्यक्तित्व है, जिसकी मुझे हर कीमत पर रक्षा करनी है। शायद मेरे लोग मुझ से नाराज हो जायेंगे परन्तु इससे क्या?"[2]

मजरूहुल हक ने बंगाल के एक देशीभाषा के समाचारपत्र को आर्थिक सहायता देने के सरकारी प्रस्ताव का विरोध किया। उन्होंने सरकारी, विचारों के प्रचार के लिए ऐसी व्यवस्था में अन्तर्निहित अनेक दोषों की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया। ऐसे अनेक प्रश्न थे जिन पर हिन्दू और मुसलमान तब सर्वथा परस्पर विरोधी विचार रखते थे। इस सम्बन्ध में बंगाल-विभाजन का उदाहरण दिया जा सकता है। आमतौर में मुसलमान तो विभाजन से खुश थे, पर हिन्दू सरकार के इस निर्णय

1. भारत के गवर्नर जनरल की परिषद की 19 मार्च, 1913 की कार्यवाही।
2. वही, 26 फरवरी, 1912।

से दु:खी थे। ऐसे मामलों में समाचारपत्रों को भारी कठिनाई हो सकती थी यदि वे विभाजन का समर्थन करते, तो निश्चय ही कोई हिन्दू उन्हें न पढ़ता। इसके विपरीत, यदि वे उसका विरोध करते, तो नि:संदेह मुस्लिम भावनाओं को ठेस पहुंचती। इसलिए मजहरुल हक कुछ ऐसे कानून पास कराना अधिक पसन्द करते थे जो आंग्ल-भारतीय समाचारपत्रों सहित समस्त समाचारपत्रों की सरकारी विज्ञप्तियां छापने के लिए बाध्य करे। सरकार वास्तव में राजद्रोहात्मक साहित्य के प्रसार से उत्पन्न प्रभाव को नष्ट करना चाहती थी। मजहरुल हक दिल से यह महसूस करते थे। उन्हें यह कहने में तनिक भी हिचकिचाहट न थी, भले ही उनके देशवासी उन्हें गलत समझें, कि "भारतीय लोकमत के नेताओं ने इस विषय में अपना कर्तव्य पूरा नहीं किया।" राजद्रोह रोकना नेताओं का परम कर्तव्य था, जिसे मजहरुल हक के अनुसार, वे संस्थायें बना कर, सभायें करके और उनके विरुद्ध नियमित अभियान चलाकर, आसानी से पूरा कर सकते थे।

अराजकतावादियों से मजहरुल हक की नहीं पटती थी और राजद्रोह का उपदेश उन्हें अच्छा नहीं लगता था। 1907 का राजद्रोही सभा अधिनियम 31 अक्तूबर, 1910 को समाप्त होने वाला था परन्तु सरकार अनिश्चित काल तक जारी रखना चाहती थी। परिस्थिति कुछ सुधर गयी थी और मजहरुल हक तथा कुछ अन्य गैर-सरकारी सदस्य यह महसूस करते थे कि देश का सामान्य कानून ही कुछ श्रेणियों के अपराधों से निबटने के लिए काफी था। 6 अगस्त, 1910 को विधेयक पर बोलते हुए उन्होंने कहा: "कुछ पागल युवकों ने हत्याओं और विध्वंसक कार्यों से देश की शान्ति को भंग करने की ठान ली है और समस्त देश को उसका दंड भुगतना पड़ रहा है।" उन्होंने तर्क देते हुए कहा कि बिहार 'विद्रोहात्मक अपराधों' से मुक्त है और वहां हिंसा भड़कने का कोई भय भी नहीं है। फिर बिहारियों को देश के कुछ अन्य भागों के अपराधियों के साथ क्यों दंडित किया जाय? इसलिए "दमनात्मक और उत्तेजनात्मक कानून बना कर दयार्द्र एवं उदार किन्तु भावुक जनता के भावों को ठेस पहुंचाना" न तो अच्छी नीति है और न अच्छी राजनीति। उनका विश्वास था कि सरकार और

जनता तथा भारत के विभिन्न सम्प्रदायों और जातियों के मध्य सच्चे और हार्दिक सहयोग में ही भारत की मुक्ति है। परन्तु उन्हें भय था कि यदि विधेयक पास हो गया तो वह सरकार के साथ जनता के सहयोग को निश्चित रूप से रोक देगा।

परिषद में मजहरुल हक सरकार और उसके अधिकारियो की आलोचना आमतौर से कम ही करते थे। कभी-कभी वे सरकार के अच्छे इरादो की सराहना भी खुलकर किया करते थे। परन्तु ऐसे भी अवसर आते थे, जब परिषद में कुछ सरकारी सदस्यों द्वारा भारतवासियों के राष्ट्रीय-चरित्र पर अशोभनीय छीटाकशी करने के विरुद्ध उन्हें भारी रोष प्रकट करना पड़ता था। इस प्रकार 28 फरवरी, 1912 को; परिषद मे पुलिस-प्रशासन पर दिये गये अपने भाषण में उन्होंने कहा, "··· इस परिषद में हम इसे अंतिम बार सुन रहे है और भविष्य मे इस परिषद में या इसके बाहर कही भी लोगों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे भारत और उसकी जनता का अपमान न करें।"

नये कर लगाने के बारे में मजहरुल हक के अपने अलग विचार थे। सिद्धाततः वे नये कराधान के विरोधी न थे। यदि उसका वास्तविक उद्देश्य देश का विकास होता था तो वे उसका समर्थन भी करते थे। परन्तु वे इस विचार को हास्यास्पद समझते थे कि जब भी धन की आवश्यकता हो तब सरकार ही सब कुछ करे। भारतीय कारखाना विधेयक पर अपने भाषण में दादाभाई नौरोजी ने इस बात पर बल दिया था कि कारखानों मे बच्चों को शिक्षा देना सरकार का कर्तव्य है। परन्तु मजहरुल के अनुसार यह कर्तव्य अनिवार्य रूप से उन लोगों का है जो उन बच्चों के श्रम से धनी हुए हैं। दादाभाई के विचारों पर तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए मजहरुल हक ने कहा "जी महाशय राज्य के कर्तव्यों को सुनते-सुनते मै थक गया हूं। हमारे क्या कर्तव्य है ? क्या हमारे कोई कर्तव्य हैं भी ? क्या सरकार ही सब बातों के लिए जिम्मेदार है ? हा, तो मैं निवेदन करता हूं कि यह कर्तव्य पूंजीपति का है जो उसे सहर्ष पूरा करना चाहिए।

श्रमिक हित वस्तुतः मजहरुल हक को बहुत प्रिय था। वे करारबद्ध (बंधुआ) मजदूरी के कटु आलोचक थे। 4 मार्च, 1912 को जब इस

प्रश्न पर परिषद में विचार हो रहा था तो उन्होंने भावुक हो कर कहा "महानुभाव ! परमात्मा ने मनुष्य को स्वतन्त्र पैदा किया है परन्तु उसका यह दिव्य अधिकार मनुष्य के बनाये कानूनों ने छीन लिया है। मनुष्य को जितनी अन्तःकरण और कार्य की स्वतन्त्रता होनी चाहिए उतनी ही श्रम की स्वतंत्रता होनी चाहिए। वे करारबद्ध (बंधुआ) मजदूरी को कानून द्वारा लादी गयी गुलामी से कम समझते थे। उन्होंने कहा "करारबद्ध मजदूरी की समस्त व्यवस्था सिद्धांततः दूषित है यह मालिक को पशु बना देती है और मजदूर का नैतिक पतन कर देती है। यह वैध ठेके के वश में गुलामी के निकृष्टतम रूप को पोषित करने का पाप कमाती है। यह प्रथा कल्पना में बुरी, कार्यान्वयन में अमानवीय और परिणामों में शरारतपूर्ण है और अविलम्ब बन्द होनी चाहिए।"

परन्तु मजहरुल हक की सबसे अधिक रुचि शिक्षा में थी। उन्होंने गोखले के प्राथमिक शिक्षा सबन्धी विधेयक का दृढ़ता से समर्थन ही नही किया, अपितु प्राथमिक शिक्षा को पूर्णतया निःशुल्क बनाने के लिए एक पृथक विधेयक भी प्रस्तुत किया। उनके विचार से निःशुल्क आरम्भिक शिक्षा सर्वदेशीय प्राथमिक शिक्षा की ओर पहला कदम था। वे चाहते थे कि लड़कों की शिक्षा के साथ-साथ लड़कियों की शिक्षा में भी प्रगति हो अवश्य ही इस सम्बन्ध में मौजूदा सामाजिक प्रथाओं का ध्यान रखना आवश्यक था। कुछ समय तक स्थानीय गलत धारणाओं को सन्तुष्ट रखना था। परन्तु इसमें उन्हें यह तनिक भी सन्देह न था कि स्त्रियों का स्तर ऊंचा उठाये बिना देश का पुनरुद्धार नहीं हो सकता। गोखले यह कह कर कि यह विस्तार का का विषय है अपने विधेयक के प्रावधान को लड़कियों पर लागू करने के विषय पर विचार करने से रुक गये थे। परन्तु मजहरुल हक उसे विधेयक का अभिन्न अंग समझते थे और उन्होंने साफ-साफ कहा, यदि कन्या शिक्षा हटाई जाती है तो इस बारे में मेरा आधा उत्साह समाप्त हो जायेगा।"

परन्तु मजहरुल हक को प्रगतिशील विचारों को उन्हीं के सम्प्रदाय के अधिकांश लोग पसन्द नहीं करते थे। विशेष रूप से. उनके भूपेन्द्र वसु के विशेष विवाह विधेयक के समर्थन से बहुत रोष पैदा हो गया।

1912 में परिषद् के चुनावों में चुने भी न जा सके। परन्तु 1913 के कानपुर मस्जिद कांड ने उन्हें फिर उनकी पहली स्थिति में पहुंचा दिया और पुनः मुस्लिम राजनीति का अग्रणी बना दिया।

कानपुर मस्जिद कांड

कानपुर मस्जिद कांड तब हुआ जब कुछ राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर भारतीय मुसलमानों की भावनायें गम्भीर रूप से भड़क उठी थीं। यद्यपि बंगाल-विभाजन रद्द करने का व्यापक स्वागत हुआ था फिर भी उससे मुसलमानों विशेष रूप से बंगाली मुसलमानों के दिमाग क्षुब्ध हो उठे थे। इसे सरकार द्वारा दिये गये कुछ आश्वासनों से पूरी तरह मुकरना समझा जाता था। अधिकांश भारतीय मुसलमानों की भावनाओं को व्यक्त करते हुए नवाब वकरुल मुल्क ने कहा "ब्रिटिश सम्राट के मंत्री एक के बाद एक बराबर यह आश्वासन दे चुके हैं कि विभाजन एक 'स्थायी तथ्य' है और एकीकरण की बात सरकार के कथनों और कार्यों में विश्वास न करने का एक कारण मानी जायेगी।"

यूरोपीय शक्तियों द्वारा तुर्की पर किये गये आक्रमणों (1912-13) और ईरान में सोवियत संघ अतिक्रमण से भारतीय मुस्लिमों का रोष और भी बढ़ा। तुर्की के प्रति भारत सरकार के मनमाने रुख से भारतीय मुसलमानों में ब्रिटिश-विरोधी भावना पैदा हो गयी। तुर्की के लिए चन्दा इकट्ठा करने और चिकित्सा सहायता भेजने के लिए देश भर में सभाएं की गयीं। इन में से कुछ सभाओं में हक ने सक्रिय भाग लिया। 16 फरवरी, 1913 को उन्होंने कलकत्ता में ऐसी ही एक सार्वजनिक सभा में भाषण दिया जिसमें उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों से तुर्की की सहायता के लिए धन इकट्ठा करने की अपील की। यह बात ध्यान देने की है कि खिलाफत-पूर्व की इस आरम्भिक स्थिति में भी उनकी यह अपील केवल मुसलमानों को लक्षित करके नहीं की गयी थी। इससे पहले पटना में उन्होंने घोषित किया था कि तुर्की के विरुद्ध छेड़े गये युद्ध को वे "एशियावासियों और यूरोपवासियों" का युद्ध समझते हैं।

भारतीय मुसलमानों के बढते हुए मनमुटाव और विरोध को इसी सामान्य पृष्ठभूमि के कानपुर मस्जिद केस को राजनीति दृष्टि से विस्फोटक प्रश्न और अपने समय का विशेष ध्यान आकर्षित करने वाला अभियोग बना दिया। 2 जुलाई, 1913 को कानपुर के म्यूनिसिपल अधिकारियों ने सड़क को चौड़ा करने की एक योजना के अन्तर्गत मछलीबाजार कानपुर में एक मस्जिद के हिस्से को पुलिसदल की सहायता से गिरा दिया। स्थानीय मुसलमानों ने इस कार्यवाई का विरोध किया तथा आगे कार्यवाइ रोकने के लिए लेफ्टि० गवर्नर जेम्स मेस्टन से प्रार्थना की। परन्तु प्रान्तीय अधिकारियों ने हस्तक्षेप करने से इन्कार कर दिया। यहा यह कहा जा सकता है कि इससे पहले एक मन्दिर के हिस्से को गिराने का प्रश्न सद्भावपूर्वक सुलझा लिया गया था; यह मन्दिर भी सड़क चौड़ा करने में रुकावट डालता था। सरकार से किसी प्रकार का आश्वासन न मिलने पर मौलाना आजाद सुभानी की अध्यक्षता में "मुसलमानों की एक आम सभा हुई जिसमे यह निर्णय हुआ कि मस्जिद के गिरे हुए हिस्सों को खुद ही दुबारा बना लिया जाय। बहुत से मुसलमानों ने जिनमें बच्चे भी थे काम शुरू किया। सरकार ने भी भीड़ को गैर-कानूनी घोषित कर दिया और 3 अगस्त को पुलिस ने गोली चला दी तथा गोलीबारी के बाद बहुत से मुसलमान बलवा करने के आरोप मे गिरफ्तार कर लिये गये। इस घटना के 5 दिन बाद ही जले पर नमक छिड़कने के लिए लेफ्टि० गवर्न० ने पुलिस के उन सिपाहियो को जिन्होंने गोलीबारी की थी, सनदे (श्रेष्ठता-प्रमाणपत्र) बाटे।

इस घटना ने देशभर में विरोध का एक तूफान खड़ा कर दिया जिसमे सभी विचारधाराओं के मुसलमान शामिल हुए। लखनऊ के प्रसिद्ध फिरंगी महल के मौलाना अब्दुल बारी ने लखनऊ के मुसलमानों के बचाव के लिए एक संस्था बनायी तथा अबुल कलाम आजाद के कलकत्ता मे कानपुर मस्जिद रक्षा संस्था बनायी। समाचार पत्रों, विशेष रूप से उर्दू समाचारपत्रों ने इस प्रश्न को उठाया और "अल-हिलाल" एवं "जमींदार" ने गोलीबारी तथा उसके बाद के राजनीतिक आन्दोलन के समाचार विस्तार से छापे। गैर-उर्दू भाषाओं के समाचारपत्र भी बिल्कुल

चुप न थे। बंगाली ने अपने उपसम्पादक बी० के० दासगुप्त को अपने विशेष संवाददाता के रूप में कानपुर भेजा और उन्होंने इस घटना तथा आन्दोलन के विस्तृत विवरण भेजे। बाद में उन्होंने 'कानपुर मस्जिद' शीर्षक में एक पुस्तक प्रकाशित की जो उनकी 'मुसलमान देशवासियों' स्मृति को समर्पित थी, जिन्होंने 3 अगस्त, 1913 को अपनी बलि दी थी। 12-19 नवम्बर, 1913 के 'अल-हिलाल' में, इस पुस्तक की सराहना-पूर्वक समीक्षा की गयी। इस पुस्तक का मूल्य एक रुपया था। अंग्रेजी के भी कुछ समाचारपत्रों ने भी इस घटना पर टिप्पणी की।

राजनीतिक आन्दोलन के अलावा गोलीबारी में आहत लोगों को वित्तीय और चिकित्सीय सहायता देने तथा इस कांड में गिरफ्तार लगभग 80 व्यक्तियों के बचाव की तात्कालिक समस्या थी। मुकदमों से हक का सम्बन्ध तब शुरू हुआ जब उन्होंने बचाव-पक्ष के वकील के रूप में काम करना आरम्भ किया। यह उन्होंने तब किया जब बहुत कम वकील इस काम को हाथ में लेने को तैयार थे। बिना फीस लिए की गयी उनकी सेवा की सराहना 'अल हिलाल' ने सार्वजनिक रूप से की। उसने अपने 20 अगस्त, 1913 के अंक में हक का पूरे आकार का चित्र छापा जिसका शीर्षक था "स्वतन्त्रता और सत्य के सच्चे सपूत श्री मजहरुल हक बैरिस्टर पटना जो पीड़ित मुसलमानों की ओर से "इस्लाम" के लिए वकील के रूप में पैरवी कर रहे हैं।" बाद में कुछ और व्यक्ति बचाव पक्ष के वकीलों की सूची में शामिल हो गये जिनमें एक हक के जामाता डा० सैयद महमूद भी थे। 22 अक्तूबर के 'अल-हिलाल' ने बचाव पक्ष के वकीलों का एक सामूहिक फोटोचित्र छापा जिसका शीर्षक था "परमात्मा उनका भला करे जिन्होंने उनकी सहायता की है जिनका कोई मित्र या सहायक न था।" एक स्थानीय उर्दू दैनिक ने इस मुकदमे की दैनिक कोर्ट कार्रवाई के प्रकाशन की व्यवस्था कर ली। सितम्बर में, प्रमुख भारतीय मुसलमानों का एक शिष्टमण्डल, जिनमें मौलाना मुहम्मद अली भी थे, इस मामले में ब्रिटिश सम्राट के मंत्रियों से तथा अन्तिम उपाय के रूप में ब्रिटिश जनता से अपील करने के लिए इंग्लैंड गया। यद्यपि विदेश मन्त्री अथवा

अन्य किसी मंत्रिमंडलीय मंत्री अथवा अन्य किसी मन्त्रिमण्डलीय मन्त्री ने इस कारण शिष्टमंडल का स्वागत नहीं किया कि वह भारत सरकार से सलाह लिए बिना चला आया था, फिर भी वह पूर्णतया विफल नहीं रहा ।

समस्या के हल के लिए सरकार ने समझौते का औचित्य अनुभव किया। अक्तूबर में, गवर्नर जनरल लार्डहार्डिंग कानपुर गये और उन्होंने गोलीबारी का स्थान देखा तथा घोषणा की कि तोड़ा हुआ हिस्सा उसी सापेक्ष स्थिति में पुनर्निमित कर दिया जायेगा जैसा वह पहले था, परन्तु वह नई सड़क के किनारे के फर्श के ऊपर खंभों के महरावों पर बनाया जायेगा।" अभियुक्तों के विरुद्ध जो मुकदमें चलाये जा रहे थे वे वापस ले लिये गये। समझौते की शर्तों की घोषणा से पहले सरकार और कुछ मुसलमान नेताओं के मध्य पर्दे के पीछे वार्तालाप हुआ था। मुस्लिम समुदाय का एक वर्ग इस सकनीकी कारण से समझौते से असन्तुष्ट था कि उसमें अब भी मस्जिद का एक भी भाग सार्वजनिक मार्ग के रूप में छोड़ दिया गया था और इस प्रकार मूल शिकायत कि मस्जिद का कोई भाग मदव ने नहीं बदला जाना चाहिए, बिना हल के ही रह गयी थी। इस प्रश्न को लेकर 'अल-हिलाल' तथा कुछ अन्य उर्दू समाचारपत्रों में अनेक पत्र प्रकाशित हुए, जिनमें से कुछ में हक का भी समझौता स्वीकार कराने में सहायता करने और इस प्रकार विश्वासघात करने के लिए आलोचना की गयी। कुछ संवाददाताओं ने तो हक पर यह भी दोष लगाया कि उन्होंने मुकदमें के लिए एकत्रित की गयी विशाल धनराशि का गबन किया है तथा इस विषय में कुछ व्यंगात्मक एवं अशोभनीय कविताये भी लिखी गयी। परन्तु, इस महत्वपूर्ण तथ्य के अतिरिक्त कि धन का प्रबन्ध हक के हाथ में न था, यह याद रखना चाहिए कि अपने उदार, राष्ट्रवादी विचारों और कार्यों के कारण हक पहले ही कुछ प्रतिवादी, कट्टर मुसलमानों के कोपभाजन बन चुके थे, यह उस पत्र से प्रकट होता है, जो 13 अप्रैल, 1913 के 'अल-हिलाल' में छपा था और जिसमें हक की गतिविधियों पर चुटकी लेते हुए कहा गया था कि वे तुर्को के लिए तो धन एकत्रित करते हैं पर राज पांच

वक्त की नमाज पढ़ने की कोई परवाह नहीं करते। सम्भवत. आलोचना और उत्तेजना का काम यही वर्ग कर रहा था।

परन्तु इसके विपरीत अबुल कलाम आजाद हक के आचरण का दृढ़ता से समर्थन कर रहे थे। उन्होंने 29 अक्तूबर, 1913 के 'अल हिलाल' के सम्पादकीय स्तम्भ में बताया कि हक केवल बचाव पक्ष के वकील हैं, उनका काम अपने मवक्किलो को छुड़ाना है और उन्होंने वह बखूबी पूरा किया है, कोई मस्जिद सार्वजनिक प्रयोजन के लिए अधिगृहीत की जा सकती है या नही, यह प्रश्न तकनीकी और धार्मिक है और हक कोई मौलवी नही है जो इस विषय मे दखल दे सकें। आजाद ने स्वीकार किया कि मैं स्वय समझौते की शर्तों से सन्तुष्ट नही हूं, परन्तु हक को दोष देना गलत और अनुचित है।

मालूम होता है इस अवधि मे हक को आजाद का विश्वास और समर्थन प्राप्त था। कानपुर गोलीकाड के पहले भी 'अल-हिलाल' के कई अंकों मे उनके कार्यो का वर्णन है। कलकत्ता की उपर्युक्त सभा में हक का परिचय कराते हुए आजाद ने कहा था कि एक चीज, जो हक के बारे मे मुझे पसन्द है, वह यह है कि वे आरम्भ से ही, केवल दो वर्ष (1911-13) से नही, एक शिक्षित और उदार मुसलमान है।

कानपुर काड ने हक को एक प्रमुख राजनीतिक नेता बना दिया। इसका अधिक महत्वपूर्ण और व्यापक परिणाम यह हुआ कि इसने मौलाना अब्दुल बारी, अली भाई, अबुल कलाम आजाद, हसरत मोहानी और हक जैसे युवा मुस्लिम नेताओं को अग्रिम पंक्ति में ला कर खड़ा कर दिया। सरकार के साथ अन्ध-सहयोग की नीति पर चलने वाले पुराने नेता पृष्ठभूमि में चले गये।

होम रूल आन्दोलन में

होम रूल आन्दोलन पूना और मद्रास में एक ही साथ शुरू हुआ। माडलें जेल से मुक्ति (जून 1914) के बाद से ही, तिलक देश में होम रूल आन्दोलन शुरू करने के लिए पृथक प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु कहीं अप्रैल 1916 में जाकर वे होम रूल लीग बना सके, जिसका मुख्यालय पूना था और अध्यक्ष बप्तिस्ता थे। उसी समय श्रीमती एनी बीसेन्ट भी इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार कर रही थीं। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से भी इस विचार के समर्थन की कोशिश की थी, परन्तु नहीं करा सकीं। इंग्लैंड में कांग्रेस के काम से पूर्ण सन्तुष्ट न होने के कारण उन्होंने वहां जून 1916 में एक सहायक होम रूल लीग स्थापित की। सितम्बर 1916 में उन्होंने मद्रास में भी होम रूल लीग बनायी। इसका लक्ष्य वही था जो कांग्रेस का था—राष्ट्र-मंडल के अन्दर स्वराज्य। कदाचित् श्रीमती एनी बीसेन्ट के तेजस्वी व्यक्तित्व के कारण, इसकी गहरी छाप पड़ी। जैसा कि जवाहरलाल नेहरू ने बाद में लिखा, "वातावरण विद्युन्मय हो गया और हम में से अधिकांश युवक निकट भविष्य में बड़ी चीजों की आशा करने लगे।"

1916 का वर्ष हमारे देश के इतिहास में अनेक कारणों से स्मरणीय है। गोखले और फीरोज शाह मेहता की मृत्यु से तिलक और श्रीमती बीसेन्ट भारतीय राजनीति की अग्रिम पंक्ति में आ गये। श्रीमती बीसेन्ट कांग्रेस के नरम दल (माडरेट) और गरम दल (एक्स्ट्रीमिस्ट) में एकता स्थापित करने में सफल हो गयीं। अधिकतर मजहरुल हक, राजा महमूदाबाद और अन्य मुस्लिम नेताओं के प्रयत्न से मुस्लिम लीग और कांग्रेस में समझौता हो गया और लखनऊ समझौते पर हस्ता-

क्षर हो गये। इस समझौते के अनुसार, दोनों पार्टियों ने स्वराज्य को भारत का लक्ष्य मान लिया। इस प्रकार देश में विद्यमान राजनीतिक स्थिति से आन्दोलन को बढ़ावा मिला और देश के विभिन्न भागों में होम रूल लीग की शाखायें स्थापित हो गयी।

बिहार में, होम रुल आन्दोलन पहले ही मजहरुल हक तथा अन्य लोगो को काफी प्रभावित कर चुका था। 16 दिसम्बर, 1916 को, पटना में, मजहरुल हक की अध्यक्षता में, होम रुल लीग की प्रान्तीय शाखा स्थापित हुई। इस अवसर पर हक ने एक मर्मस्पर्शी भाषण दिया, जिसमें उन्होने इस देश मे होम रूल (स्वशासन) के लिए प्रबल तर्क दिये और यह घोषित करते हुए कुछ लोगो के अविश्वास को दूर कर दिया कि यह आयरिश (आयरलैंड की) छाप का होम रूल आन्दोलन नही होगा। हक के अनुसार, इसका अर्थ था "ब्रिटिश राज के अधीन स्वशासन (स्वराज्य)।"

1917 मे देश भर मे राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हो गयी और होम रूल के पक्ष में व्यापक जन आन्दोलन शुरू हो गया। आन्दोलन भारत के कोने कोने तक फैल गया तथा देश भर मे होम रूल लीग की शाखायें स्थापित हो गयी। परन्तु शीघ्र ही सरकार का दमन-चक्र शुरू हो गया और आन्दोलन की बढ़ती हुई लोकप्रियता के साथ-साथ उसकी तीव्रता भी बढ़ती गयी। फरवरी 1917 मे पंजाब सरकार ने भारत प्रतिरक्षा अधिनियम के अधीन एक आदेश निकाल कर तिलक का प्रान्त में प्रवेश वर्जित कर दिया। 15 जून, 1917को, मद्रास सरकार ने श्रीमती बीसेन्ट और उनके घनिष्ठ साथियों जी०एस० अरुन्डेल और बी० पी० वाडिया को नजरबन्द कर दिया। इस घटना की देश में जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई इसके तुरन्त बाद ही मुहम्मद अली जिन्ना होम रूल लीग में शामिल हो गये।

महात्मा गांधी ने, जो अब तक आन्दोलन से अलग रह रहे थे, 10 जुलाई 1917 को वाइसराय के निजी सचिव जे०ई माफे को लिखा "मेरे विनम्र विचार से नजरबन्दियां एक भारी गलती है। इससे पहले

मद्रास में पूर्ण शान्ति थी, परन्तु अब घोर अशान्ति है। भारत सम्पूर्ण रूप से श्रीमती बीसेन्ट के साथ न था, परन्तु अब वे भारत को अपने तौर तरीकों पर चलाने में काफी आगे बढ़ गयी हैं।'''' मुझे स्वयं श्रीमती बीसेन्ट के तौर-तरीके अधिक पसन्द नहीं हैं, मैंने युद्ध के दौरान राजनीतिक प्रचार चलाये जाने का विचार पसन्द नहीं किया है। मेरे विचार से हमारा सयम ही सर्वोत्तम प्रचार होता पर साथ ही कोई भी व्यक्ति श्रीमती बीसेन्ट के भारत के लिए महान त्याग और प्रेम अथवा पूर्णतया सांविधानिक बने रहने की इच्छा से इन्कार नहीं कर सकता, परन्तु समस्त देश मेरे विरुद्ध था।''''कांग्रेस श्रीमती बीसेन्ट पर और श्रीमती बीसेन्ट कांग्रेस पर हावी होने का प्रयत्न कर रही थी। अब दोनों लगभग एक हो गयी हैं।"

बिहार में भी 1 जुलाई को, पटना में, मजहरुल हक की अध्यक्षता में, श्रीमती बीसेन्ट को नजरबन्दी के विरोध में एक विरोध सभा हुई। सैयद हसन इमाम ने सक्रिय भाग लिया और जैसा कि स्थानीय समाचारपत्र "दी एक्सप्रेस" ने बताया, "इस समय एक सुखद बात यह हुई कि सभा के अन्त में बहुत से नेता लोग, जो अब तक होम रूल लीग से अलग थे, उसमें शामिल हो गए।" शीघ्र ही, नजरबन्दी को मुक्त कराने के लिए सत्याग्रह अभियान शुरू करने का विचार उठा।

जुलाई में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति और मुस्लिम लीग परिषद् का सम्मिलित अधिवेशन हुआ। सत्याग्रह के औचित्य पर प्रान्तीय कांग्रेस समितियों और मुस्लिम लीग परिषद् के विचार जानने का निश्चय किया गया। बरार ने सत्याग्रह के पक्ष में मत दिया परन्तु बम्बई, बर्मा और पंजाब ने माटेग्यु की प्रत्याशित भारत यात्रा का ध्यान में रखते हुए उसे स्थगित रखने की सलाह दी। यू० पी० ने वर्तमान स्थिति में उसे अनुचित बताया।

बिहार, जो मजहरुल हक के समर्थ पथ प्रदर्शन में काम कर रहा था, इस विषय में स्पष्ट राय रखता था। उसका निर्णय अनूठा था। बिहार का विचार था, कि "एक अवधि निश्चित की जानी चाहिए,

जिसके अन्दर होम रूल के नजरबन्दियों तथा अली भाइयों और मौलाना अबुल कलाम आजाद को छोड़ने की मांग की जानी चाहिए। बिहार विभिन्न मंचों से मुक्ति की मांग दुहरायेगा और उसे तीव्र बनायेगा तथा विफल होने पर प्रान्त के सार्वजनिक कार्यकर्ता सक्रिय रूप से जनता को सत्याग्रह का उपदेश देना शुरू कर देंगे और उसके फलस्वरूप होने वाली सभी कठिनाइयों और बलिदानों को सहने के लिए तैयार रहेंगे।

परन्तु कुछ घटनाओं से, जो लगभग इसी प्रान्त में और उसके नेता मजहरुल हक के व्यक्तिगत जीवन में घटी, आन्दोलन पर विपरीत प्रभाव भी पड़ा होगा। महात्मा गांधी ने पहले ही चम्पारन में अपना काम शुरू कर दिया था और वहां अपने सहयोगियों को सलाह दी थी कि वे होम रूल आन्दोलन से तब तक अलग रहें जब तक जांच पूरी न हो जाए। इसके अलावा, जो प्रान्त अब तक साम्प्रदायिक सद्भाव का अनूठा दृश्य प्रस्तुत कर रहा था। उसी के शाहाबाद जिले में गम्भीर साम्प्रदायिक उपद्रव भड़क उठे और इस समस्या पर मजहरुल हक तथा प्रान्त के अन्य नेताओं को अधिक और तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता थी। इसके अलावा एक व्यक्तिगत कारण था। मजहरुल हक ने 50 वर्ष की अवस्था में तीसरी शादी कर ली थी। इससे भी "मजहरुल हक के लिए कुछ प्रतिकूल वातावरण" बन गया था। एक स्थानीय समाचारपत्र "दी पाटलिपुत्र" (18 अगस्त, 1917) ने लिखा "जीवन की इस अवस्था में उनकी शादी को हम विलासिता के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझते। जो इस बात को जानते हुए भी कि वह देश का नेता है, इस उम्र में शादी करता है, वह कभी भी नेतृत्व के योग्य नहीं है। ऐसे काम निश्चय ही देश को पतन की ओर ले जायेंगे।" शायद यह पत्र हक के राजनीतिक विरोधियों के विचारों का प्रतिनिधित्व करता था।

इसी दरम्यान 20 अगस्त को माटेग्यू ने अपनी प्रसिद्ध घोषणा की कि भारत में ब्रिटिश नीति का लक्ष्य देश में धीरे-धीरे उत्तरदायी शासन की स्थापना करना है। उन्होंने यह भी घोषित किया कि मैं वाइसराय से परामर्श करने तथा स्वशासन की ओर भारत की प्रगति से संबंधित सभी हितों के लोगों की बात सुनने के लिए भारत जाना चाहता हूं।

इस घोषणा से देश का गर्म वातावरण ठंडा पड़ गया। नयी नीति के अनुसरण में श्रीमती बीसेन्ट और उनके सहयोगी 16 सितम्बर 1917 को छोड़ दिये गये। परन्तु मालूम होता है यह समाचार बिहार नहीं पहुंचा क्योंकि उसी दिन (16 सितम्बर को) गया शाखा ने बाबू दुर्गा प्रसाद के मकान में होम रूल आन्दोलन का त्रैमासिक उत्सव मनाया। एक प्रस्ताव द्वारा यह निश्चय किया गया कि मजहरुल हक और कृष्णसहाय को तार भेजकर उनसे प्रार्थना की जाय कि वे वाइसराय से श्रीमती बीसेन्ट, अरुन्डेल, वाडिया, शौकत अली, मुहम्मद अली, अबुल कलाम आजाद तथा अन्य नजरबन्दों की रिहाई के लिए कहें। एक प्रमुख सदस्य परमेश्वर लाल द्वारा प्रस्तुत गए प्रस्ताव के अनुसार, बाबू दुर्गाप्रसाद के मकान से एक जुलूस निकाला गया, जो नजरबन्दों की शीघ्र रिहाई और होम रूल की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करने के उद्देश्य से नगर के अनेक पवित्र स्थानों में गया। जुलूस के साथ होम रूल का झंडा भी ले जाया जा रहा था। अपने अध्यक्षीय भाषण में विष्णुप्रसाद ने कहा कि जिले के सभी गावों में होम रूल का प्रचार करना चाहिए ताकि वह किसानों तक पहुंच सके।

मद्रास प्रान्तीय कांग्रेस समिति पहले तो सत्याग्रह के विचार से सहमत थी, पर 28 सितम्बर, 1917 को उसने निम्नांकित प्रस्ताव पास कर दिया।

"बदली हुई राजनीतिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए सत्याग्रह के प्रश्न पर विचार स्थगित रखा जाये।"

6 अक्तूबर को इलाहाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति और मुस्लिम लीग परिषद् का संयुक्त अधिवेशन आयोजित किया गया। आम राय सत्याग्रह के प्रश्न को त्याग देने के पक्ष में थी। अधिवेशन ने निश्चय किया कि कांग्रेस-लीग योजना के समर्थन में एक अर्जी के साथ एक शिष्टमंडल को वाइसराय और विदेशमंत्री के पास भेजा जाये। वाइसराय और विदेशमंत्री ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के शिष्टमंडल का स्वागत किया, जिसमें माटेग्यू के अनुसार "राजनीतिक जगत् के असली धुरन्धर थे,"[1] क्योंकि उनमें श्रीमती बीसेन्ट मजहरुल हक, हसन इमाम, वासन पिल्ले, गांधी और जिन्ना शामिल थे।

---

1. माटेग्यू, ई० एस० एस० भारतीय डायरी, पृ० 8।

परन्तु ऐसा मालूम पड़ता है कि स्वयं श्रीमती बीसेन्ट में परिवर्तन आ गया। बताया जाता है कि उन्होने अपने एक मित्र से कहा कि 'हमें मि० मांटेग्यू का समर्थन करना चाहिए। माडरेट (नरम दल वाले) हर जगह इस कथन को दुहराते थे और कहते थे कि यदि भारत मे एक्स्ट्रीमिस्ट (गरम दल वाले) तथा इंग्लैंड में डाईहार्ड (पुराने विचार वाले) मांटेग्यू का बहिष्कार करेंगे तो वे कुछ नहीं कर सकेंगे। दिसम्बर 1917 में, श्रीमती बीसेन्ट ने कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन की अध्यक्षता की। उनके अध्यक्षीय भाषण मे भारत में स्वराज्य के सिद्धांत का विस्तृत विशदीकरण था।

कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास कर भारत के लिए उत्तरदायी शासन के लक्ष्य की घोषणा पर साभार सन्तोष व्यक्त किया और पुरजोर अनुरोध किया कि एक निश्चित अवधि मे जनता के लिए आवश्यक संसदीय कानून बनाया जाये। उसने अपना यह विचार भी दृढ़ता से प्रकट किया कि इस दिशा में पहले कदम के रूप में सुधारों की कांग्रेस-लीग योजना तत्काल लागू की जाये।

बिहार में, लगभग इसी समय, होम रूल कार्यकर्ता कांग्रेस-लीग योजना के पक्ष में हस्ताक्षर-अभियान मे जुटे हुए थे। 22 दिसम्बर, 1917 को, दरभंगा जिला कांग्रेस समिति के सचिव पंडित भुवनेश्वर मिश्र ने, होम रूल लीग के पक्ष मे 3,570 व्यक्तियों के हस्ताक्षरों से युक्त एक महाकाय ज्ञापन बिहार व उड़ीसा सरकार के मुख्य सचिव को भेजा। यह ज्ञापन भारत मंत्री को सम्बोधित था। इसी प्रकार की एक याचिका, जिस पर 3,570 व्यक्तियों के हस्ताक्षर थे, मुंगेर जिले के लोगों की ओर से भी भेजी गयी थी। कहा जाता है कि ज्ञापन स्वयं महात्मा गांधी ने तैयार किया था। ज्ञापन का पाठ इस प्रकार है :—

"याचिका दाताओं ने उस स्वराज्य योजना पर विचार किया है और उसे समझा है, जो अखिल भारतीय मुस्लिम लीग परिषद और अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा तैयार की गयी है तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और अखिल भारतीय मुस्लिम लीग द्वारा गत वर्ष सर्वसम्मति से स्वीकार की गयी है।

2. याचिकादाता योजना को मजूर करते हैं।

3. याचिकादाताओं की राय में उपर्युक्त योजना में प्रस्तावित सुधार भारत और साम्राज्य के हित में अत्यावश्यक है।

4. याचिकादाताओं का यह भी विश्वास है कि ऐसे सुधारों के बिना भारत सच्चे सन्तोष के युग में पदार्पण नहीं कर सकेगा।

इन कारणों से याचिकादाता प्रार्थना करते हैं कि आप कृपा करके सुधार प्रस्तावों पर भली-भांति विचार करें और उन्हें स्वीकार करें तथा इस प्रकार विशेष कष्ट उठाकर की गयी अपनी यात्रा को सफल बनायें और राष्ट्र की आशा को पूरा करें तथा इस अनुकम्पा के लिए याचिकादाता सदा आभारी रहेंगे।"

बिहार की एक और घटना, जिसने सरकारी क्षेत्रों में तहलका मचा दिया, गया के बाबू दुर्गाप्रसाद के घर पर होमरूल का झंडा लगाना था। इसने वही काम किया जो सांड को बिदकाने के लिए लाल कम्बल करता है। 16 दिसम्बर, 1917 के एक गोपनीय सरकारी नोट में कहा गया "कि गया में किसी चीज ने जनता को इतना नहीं भड़काया जितना बाबू दुर्गा प्रसाद द्वारा लगाये गये होमरूल के झंडे ने। लोग झंडे को प्रत्यक्ष अवज्ञा का कार्य समझते हैं। वे झंडे के महत्व को भली भांति समझते हैं, क्योंकि महाभारत में अनेक स्थलों पर कहा गया है कि महारथियों के अपने-अपने झंडे होते थे, और वे सोचते हैं कि झंडे को लगा रहने देने का अर्थ है कि सरकार के पास उसका लहराना रोकने की कोई शक्ति नहीं है।"

10 जून, 1918 को प्रान्तीय सरकार ने भारत सरकार से पूछा कि बाबू दुर्गाप्रसाद के विरुद्ध कार्रवाई की जाये। गृह-विभाग ने अपने उत्तर (6 मार्च, 1918) में उस कार्रवाई की याद दिलायी जो ऐसे ही एक अपराध के लिए श्रीमती बीसेंट के विरुद्ध की गयी थी। जस्टिस सदाशिव अय्यर ने अपने निर्णय में सब-डिवीजनल आफिसर द्वारा किये गये उनके चालान की कटु आलोचना की थी। विद्वान न्यायाधीश ने कहा था, "होमरूल का झंडा फहराना सर्वथा वैध एवं न्यायसंगत कार्य है तथा मजिस्ट्रेट का

कर्तव्य विधि सम्मत कार्यों के पालन मे नागरिक की रक्षा करना होना चाहिए ।" इसलिए प्रान्तीय सरकार को सलाह दी गयी कि वह "शर्त को अनदेखा कर दे और बाबू दुर्गाप्रसाद के विरुद्ध कोई कार्रवाई न करे । तब स्थानीय अधिकारियों ने उन्हें तंग करने के लिए अत्यन्त आपत्तिजनक हथकंडे अपनाये । जून मे उन्होंने "मद्यपान, दुराचरण और पुलिस पर आक्रमण " के अपराध मे उन्हें गिरफ्तार कर लिया ।

यहां यह बता देना आवश्यक है कि कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में राष्ट्रध्वज के संबंध मे एक प्रस्ताव स्वीकार किया गया था । होमरूल लीग का तिरंगा झंडा ही वस्तुतः कांग्रेस का झंडा बन गया । बाद में, उसमें चर्खे का चित्र अंकित कर दिया गया ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का कलकत्ता अधिवेशन कांग्रेस और होमरूल लीग को एक दूसरे के निकट ले आया था । होमरूल लीग का संविधान समय की आवश्यकता के अनुसार संशोधित कर दिया गया । 17, फरवरी 1918 को, होमरूल लीग की एक बैठक पटना में बुलायी गयी, जिसमें अनेक जिलों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया । इस बैठक में अन्य पदाधिकारियों के साथ-साथ मजहरुल हक अध्यक्ष और के० बी० सहाय सचिव चुने गये । बैठक मे एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव ग्राम अभियान शुरू करने और चन्दा इकट्ठा करने के संबंध में पास किया गया । छपरा आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र बन गया । सारन जिले के विभिन्न भागों में अनेक बैठकें की गयी । एक स्वामी मणीन्द्र सेन (शायद शाहाबाद जिले के निवासी) ने इन बैठकों मे बहुत सक्रिय भाग लिया । पटना मे भी, वर्ष के आरम्भिक महीनों मे लीग की गतिविधियां बहुत बढ़ गयी । 3 मार्च को लीग के मुखपत्र के रूप मे एक समाचार-पत्र 'दी सर्चलाइट' निकालने के लिए हसन इमाम के निवास-स्थान पर एक बैठक हुई । इस प्रयोजन के लिए हसन इमाम ने स्वयं 5000 रु० का अंशदान किया । रेलवे स्टेशनों पर ऐसे मुद्रित पर्चे बिक्रयार्थ रखे रहते थे जिनमें होमरूल आन्दोलन की प्रशंसा में गाने लिखे होते थे तथा, जिनमे भारत मे पुराने स्वर्णिम दिनों की वापसी की भविष्यवाणी रहती थी और यात्री लोग उन्हें बड़े-चाव से खरीदते थे।

18 अप्रैल को, श्रीमती बीसेंट एक संक्षिप्त यात्रा पर पटना आयी। शहर में भारी उत्तेजना थी। स्टेशन से पूर्णेन्दु नारायण सिन्हा के मकान तक वे एक विजय जुलूस के साथ गयी। जिस गाड़ी में वे बैठी थीं, उसे उत्साही लोग खींच रहे थे और जिस प्रकार, हिन्दू देवताओं की आरती उतारी जाती है, उसी प्रकार मार्ग में उनके सम्मान में तीन बार उनकी आरती उतारी गयी। अपराह्न में उन्होंने अली मंजिल में भाषण दिया।

उनकी गतिविधियों ने लोगों के दिमागों में भारी उथल-पुथल मचा दी। उनके इस दुष्प्रभाव को रोकने के लिए, वाइसराय ने साम्राज्य के युद्ध-प्रयत्नों में सहायता के लिए अपील निकाली। तदनुसार, 4 मई को एक बैठक हुई, जिसमें स्थानीय होमरूल के नेताओं ने सैनिक भर्ती के काम में सरकार को सहायता देने का आश्वासन दिया। परन्तु बाद में, उनका आचरण स्थानीय सरकारी अधिकारियों के लिए एक पहेली बन गया। इस विषय में अपने प्रतिवेदन में पटना डिवीजन के कमिश्नर ने कहा, "जैसा कि आपको विदित है, सैनिक भर्ती के संबंध में होमरूल की बैठकें पटना शहर में, गत मास की 15 तारीख को हसन इमाम की अध्यक्षता में और गया में, गतमास की 25 तारीख को हुई, जिनमें हसन इमाम, एस. सिन्हा और खान बहादुर सफ्दर खा ने भाषण दिये। अब तक भर्ती पर इन समस्त लच्छेदार भाषणों का क्रियात्मक प्रभाव शून्य मालूम पड़ता है ... मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि इस सब का क्या अर्थ है। कुछ लोग कहते हैं कि यह इसलिए है क्योंकि होम रूल के व्याख्यान विशारदों का कोई प्रभाव ही नहीं है तथा दूसरे लोग कहते हैं कि वास्तव में वे सहायता करना ही नहीं चाहते। सच्चाई संभवतः इन दोनों कथनों के बीच में है।"

परन्तु, लगभग इसी समय, लगातार कई घटनाएं घट गयीं। पहली बात यह हुई कि जनता की रुचि सुधार योजना की ओर मुड़ गयी। प्रान्तीय कांग्रेस समितियों से कहा गया कि वे इस विषय पर अपनी सुविचारित राय भेजें। मजहरूल हक की अध्यक्षता में प्रान्तीय कांग्रेस समिति की एक बैठक हुई, जिसमें उन्होंने उदार दृष्टिकोण से भाषण दिया। उनका

मत था कि यह जानने के लिए कि सुधार योजना में कितना दम है, उसे परख कर देखा जाए। बाद में, बम्बई में आयोजित कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में हसन इमाम ने भी लगभग ऐसे ही विचार प्रकट किये। अन्य प्रान्तों में तो सुधार योजना ने नरम दल वालों और गरम दल वालों के मध्य मतभेदों की खाई को और चौड़ा कर दिया, परन्तु बिहार में मतभेद अधिक स्पष्ट नहीं हुए।

दूसरी महत्वपूर्ण घटना युद्ध में जर्मनी की हार थी। तुर्की के टुकड़ों में बटने की सम्भावना ने देश भर के मुसलमानों की भावनाओं को भड़का दिया। रौलट एक्ट ने अन्य सम्प्रदायों में भी असन्तोष और क्रोध की भावना फैलाने में केवल मदद ही की। होम रूल आन्दोलन पृष्ठभूमि में चला गया और खिलाफत का प्रश्न सामने आ गया। असहयोग आन्दोलन भी शुरू हो गया और मजहरुल हक को बिहार की जनता के नेतृत्व के लिए पुनः याद किया गया।

सर्व-इस्लामवादी गतिविधियां

विश्वभर के मुसलमानों में एकता और घनिष्ठता की भावना के सामान्य परन्तु अर्थ में 'सर्व-इस्लामवाद' उतना ही पुराना है जितना स्वयं इस्लाम। आमतौर से यह प्रसुप्त एवं क्षीण भाव ही बना रहा और कभी-कभी तो मुस्लिम राज्यों में प्रतिद्वन्द्वों एवं संघर्षों के कारण इसका घोर विरोध भी होता रहा। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, अन्तिम महत्वपूर्ण मुस्लिम शक्ति तुर्की साम्राज्य (आटोमन एम्पायर), के विरुद्ध पश्चिमी शक्तियों के बढ़ते हुए आक्रमण के जोर से सर्व-इस्लामवाद को एक नया रूप और एक नयी शक्ति प्राप्त हुई। सर्व-इस्लामवाद को यह नया रूप अधिकांशतः प्रसिद्ध जमालुद्दीन अफगानी (1838/9-1897) की गतिविधियों के कारण मिला, जिन्हें तुर्की के सुल्तान अब्दुल हमीद द्वितीय के रूप में, कुछ काल के लिए, एक उत्साही समर्थक मिल गया। तुर्की के सुल्तान अब्दुल हमीद II सर्व-इस्लामवाद के एक प्रमुख आधार-स्तम्भ—खिलाफत संस्था का विकास करके मुस्लिम एकता की पुनरुज्जीवित भावना का राजनीतिक उपयोग करना चाहते थे। युवा तुर्की (यंग टर्क्स) ने उनकी नीति को, कुछ संशोधनों के साथ जारी रखा। भारतीय मुसलमानों में उसकी सबसे अधिक अनुक्रिया हुई तथा उसी के कारण 1920 से आरम्भ होने वाली दशाब्दी के सुप्रसिद्ध खिलाफत आन्दोलन की नींव पड़ी।

वास्तव में, भारत-तुर्की सहयोग के प्रयत्न काफी पहले शुरू हो गये थे। ऐसे लिखित प्रमाण हैं कि इस देश में ब्रिटिश विस्तार के आरम्भिक वर्षों में ही टीपू सुल्तान ने अंग्रेजों के विरुद्ध सहायतार्थ तुर्की को अपने दूत भेजे थे। इस्लामी जगत का खलीफा होने के कारण तुर्की का सुल्तान स्वभावतः महान् धर्म-रक्षक

समझा जाता था। इसलिए मुस्लिम-जगत में तुर्की की बहुत प्रतिष्ठा थी। सन् 1880 के आस-पास बिहार में, विशाल पैमाने पर, भारत-तुर्की सहयोग की विद्यमानता का पता चला है। यह मालूम हुआ है कि बिहार के विभिन्न भागों में तथा बाहर भी, 1876 से ही, तुर्की की सहायता के लिए (रूस-तुर्की युद्ध) धन एकत्रित किया जा रहा था। मोतीहारी और मुजफ्फरपुर (दोनों बिहार में) के जिला अधिकारियों ने इस प्रयोजन के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों को संयुक्त सभायें किये जाने की सूचना दी थी। सूचना में बताया गया था कि स्त्रियों ने धन जुटाने के लिए अपने जेवर तक बेच दिये थे। छपरा जिले का निवासी और कलकत्ता वेधिशा वर्ग का सदस्य अजमत अली पहला प्रतिनिधि था, जो प्रकट रूप ा भारत से भेजे गये धन के आवन्टन और व्यय की जाच के उद्देश्य से र्की गया था। परन्तु वस्तुतः वह भारत और तुर्की के मध्य गुप्त सम्पर्क ापित करने के लिए गया था। देश के अन्य भागों में भी ऐसे बहुत संगठन बन गये, जो तुर्की के साथ ब्रिटिश विरोधी सहयोग के प्रयत्नों लगे हुए थे। इनमें एक सबसे अधिक महत्वपूर्ण 'अन्जुमन-ए-इस्लाम' था। ीं का भूतपूर्व प्रधानमंत्री ओस्मान पाशा आन्दोलन का मुख्य संरक्षक । तुर्की का सुल्तान पहले तो आन्दोलन से अपने आप को सम्बद्ध करने हिचकिचाया; परन्तु जब उसे यह बताया गया कि भारत के अंग्रेज ाक केवल भारतीय स्वयं सेवकों को ही तुर्की जाने और रूस-तुर्की युद्ध ामिल होने से नही रोक रहे, तुर्की की सहायता के लिए एकत्रित की गयी विशाल धन राशि को भी रोक रहे हैं, ह आन्दोलन को बढ़ावा देने में अपने आध्यात्मिक प्राधिकार का उप- करने के लिए राजी हो गया। इस उद्देश्य को सामने रखते हुए, -तुर्की सम्बन्धों को दृढ़ करने के लिए कुस्तुनतुनिया (कास्टेंटिनोपिल) : उर्दू अखबार 'ाइक-इस्लाम' शुरू किया गया।

ारत में प्रधिकारियों को कड़ी सतर्कता के बावजूद, भारत तुर्की ' अबाध गति से चलता रहा। 1908 में मौलाना अबुल कलाम ' ने ईराक, मिस्र और तुर्की की यात्रा की। वे अनेक ईरानी और ान्तिकारियों के सम्पर्क में आये, जो अपने-अपने देशों में लोकतन्त्र

और स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए काम कर रहे थे। आजाद युवा तुर्क आन्दोलन से बहुत प्रभावित हुए। मौलाना आजाद के अनुसार, युवा तुर्कों को इस बात से बड़ा आश्चर्य था कि भारतीय मुसलमान क्रान्तिकारी गतिविधियों में बहुत कम भाग लेते हैं। यद्यपि मौलाना आजाद बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन से पहले से ही सम्बद्ध थे, फिर भी, तुर्की से लौटने के बाद, वे इस दिशा में और भी अधिक उत्साह से काम करने लगे। उन्होंने एक उर्दू साप्ताहिक समाचारपत्र 'अल-हिलाल' शुरू किया जिसकी लोकप्रियता शीघ्र ही सरकार के लिए भारी सिरदर्द बन गयी। लगभग इसी समय वे मौलाना मजहरुल हक के सम्पर्क में आये। 'अल-हिलाल' के 1912-13 के अंकों में कलकत्ता तथा अन्य स्थानों में हुई उन सभाओं के अनेक उल्लेख हैं, जिनमें हक ने तुर्की के लिए धन एकत्रित करने तथा सहानुभूति प्रकट करने के वास्ते भाषण दिये थे। कानपुर मस्जिद केस के दौरान, वे उस समय के कुछ सर्वाधिक पुराने सर्व-इस्लामवादियों के निकटतर सम्पर्क में आये, जैसे 'जमींदार' के जाफर अलीखां, 'कामरेड' के मुहम्मद अली, अंजुमन-ए-खुद्दाम-ए-काबा' के शौकत अली (मुहम्मद अली के भाई) आजाद सुभानी (कानपुर केस में राजद्रोह के अपराध में गिरफ्तार) अभिनिषिद्ध पत्र 'तौहीद' के संपादक हसन निजामी तथा बहुत से अन्य इसी दरम्यान (नवम्बर 1913) रेड क्रेसेन्ट सोसाइटी का एक तुर्की प्रतिनिधिमंडल भारत आया, जिसके कारण मजहरुल हक को सर्व-इस्लामवादियों से बहुधा मिलने-जुलने के और भी अनेक अवसर मिले।

तुर्की प्रतिनिधियों[1] तथा मौलाना अबुल कलाम आजाद, हसन निजामी और आजाद सुभानी के साथ मजहरुल हक की कई बैठकें हुईं। मजहरुल हक ने एक भाषण दिया जिसमें उन्होंने प्रतिनिधियों से कहा कि वे अपने देशवासियों और सुल्तान को भी जाकर बतायें कि भारतीय मुसलमान इस्लाम की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए, आवश्यकता पड़ने पर अपने प्राणों और सम्पत्ति का बलिदान करने को तैयार हैं।

यह पहले ही निश्चित हो चुका था कि मजहरुल हक दो महीने बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में इंग्लैंड जायेंगे।

1. तुर्की प्रतिनिधिमंडल में खूरशीद पाशा, इरफान बेग और एनर बमान थे।

इसलिए तुर्की प्रतिनिधियों के साथ यह तय हुआ कि वापसी यात्रा में वे तुर्की जायेंगे। 18 अप्रैल, 1914 को हक मुहम्मद अली जिन्ना, भूपेन्द्रनाथ बसु, एन० एम० समर्थ, सच्चिदानन्द सिन्हा, बी० एम० शर्मा और लाला लाजपतराय के साथ जहाज द्वारा इंग्लैंड के लिए रवाना हो गये। वहां अपना काम पूरा करके वे भारत लौट आये। मार्ग में वे कुस्तुनतुनिया भी गये (जून में), जहां युवा तुर्क पार्टी और रेड क्रैसेन्ट सोसायटी के संगठन-कर्ताओं ने उनका हार्दिक स्वागत किया। वहां उनके अवस्थान काल में "उनके आतिथ्य-सत्कार की देखभाल के लिए तुर्की सरकार ने त्यूफीक बैग को नियुक्त कर दिया था।" तुर्की अधिकारियों ने भी उनका हार्दिक स्वागत किया। सुलतान के साथ भेंटवार्ता की अनुमति भी उन्हें दे दी गयी। यद्यपि उन्होंने भारत सरकार की शासन-पद्धति की आलोचना की, फिर भी उनके बयान इतने सन्तुलित थे कि उन पर कोई सन्देह न था कि 'उनकी यात्रा का कुछ और ही उद्देश्य था'। कुस्तुनतुनिया-स्थित ब्रिटिश राजदूत की सूचना के अनुसार मजहरुल हक त्रैमासिक पत्र 'जहान-ए-इस्लाम' से सम्बन्धित थे, जिसके एक अंक में सम्पादक के साथ उनकी भेंट वार्ता छपी थी। नीचे भेंटवार्ता के फ्रांसीसी भाषान्तर के अंग्रेजी अनुवाद का हिन्दी अनुवाद किया जा रहा है :—

27 जून, 1914

भारत और तुर्की के मुसलमान

हम भारत के एक महान् मुसलमान मजहर-उल-हक इफेन्डी की अपने नगर में उपस्थिति की घोषणा कर चुके हैं। जैसा कि हमने पहले कहा है, एस० एम० आई० मुल्तान शुक्रवार को उनसे भेंटवार्ता कर चुके हैं।

मजहर इफेन्डी का स्वागत-सत्कार पेरा-राजमहल में किया गया था, जहां वे 'ला इकदम' के सम्पादक के साथ आये थे। 'ला इकदम' के सम्पादक के समक्ष उन्होंने महत्वपूर्ण घोषणायें की हैं। कुछ दिनों पहले वे चार अन्य प्रतिनिधियों के साथ ब्रिटिश सरकार से यह स्वीकार कराने इंग्लैंड गये थे कि वह यह स्वीकार करे कि इस [illegible] के लिए 12 सदस्यों की असेम्बली में ब्रिटिश भारत [illegible] बद किये जाते हैं, उनके स्थान पर [illegible]

चुने जायें। ब्रिटिश मन्त्रिमंडल ने यह मांग स्वीकार कर ली है और संसद (हाउस आफ लार्डस) में पास हो चुकी है। मजहर इफेन्दी ने यह भी कहा है," लन्दन में अपना काम समाप्त करके मैं अपने साथियों को छोड़ कर यहां चला आया हूं। कुस्तुनतुनिया में मेरे मित्र मेरी यात्रा के कार्यक्रम से अवगत थे।"

"भारत के मुसलमान, आरम्भ से ही, धार्मिक बन्धनों से तुर्कों (आटोमनों) के साथ बंधे होने के कारण, इस देश के कल्याण और समृद्धि में सदा ही रुचि रखते हैं। मैंने युवा तुर्कों तथा युवा तुर्की का अध्ययन करने के लिए ही यह यात्रा की है। भारत की जनता को तुर्की और तुर्कों के बारे में सही जानकारी नही है। यूरोप के समाचार पत्रों की तरह भारत के समाचार पत्र भी तुर्की की सही तस्वीर पेश करने में सफल नही हुए।

कांसटेन्टीनोपोल में प्रवास के दौरान मुझे बहुत से राजनीतिज्ञों तथा मंत्रियों से बातचीत करने का सुअवसर मिला। मैं वहां के पुरातन अवशेषों संग्रहालयों तथा धार्मिक संस्थानों को देखने गया। तुर्की के प्रति मेरा प्रेम और लगाव बढ़ता ही जा रहा है, क्योंकि मुझे विश्वास है कि वे तीव्र गति से प्रगति और परिवर्तन की ओर बढ़ रहे हैं। मैं कह सकता हूं कि यदि तुर्क इसी गति से और ऐसे ही दृढ़ निश्चय के साथ 20 वर्ष और काम करें, मेरा मतलब है यदि यूरोप की शक्तियां नये-नये संकट खड़े करके इस राष्ट्र के कार्य में बाधा न डालें, तो तुर्क लोग न केवल अब तक हुई हानि की क्षतिपूर्ति न कर लेंगे अपितु देश को बहुत आगे ले जाएंगे।

"मैं युवा तुर्कों से मिल चुका हूं—अत्यन्त प्रभावशाली और अत्यन्त प्रशस्त हैं युवा तुर्क। मैंने देखा है कि वे सभी क्रियाशील और धार्मिक वृत्ति के हैं। वे सत्यनिष्ठा से काम करते हैं और आकांक्षायें रखते है।" खुदा करे निकट भविष्य में ही उनके यह प्रयत्न सफल हो जायें।

"एस० एम० आई० सुल्तान ने मुझसे साक्षात्कार के दौरान, जिसका अवसर उन्होंने मुझे कृपापूर्वक दिया, भारतीय मुसलमानों द्वारा युद्ध में शाही तुर्की ध्वज (शाह) को दिये गये समर्थन के लिए भारी कृतज्ञता प्रकट की है। श्रीमान उच्च योग्यताओं और महान् इस्लामी गुणों के निधान हैं। इनसे मुस्लिम जगत को खुश होना चाहिए।"

कुस्तुनतुनिया के एक और समाचार पत्र 'इकदम' के संवाददाता ने मजहरुल हक के साथ एक भेंटवार्ता का विवरण, 23 जून,

1914 के अंक में छापा । इसी समाचारपत्र में हमीदी मस्जिद में सुल्तान के साथ उनकी भेंट का विवरण छपा ।

'जहान-ए-इस्लाम' नियमित रूप से मजहरुल हक के पास आता था बाद में राजद्रोहात्मक लेख प्रकाशित करने के अपराध में उसे जब्त कर लिया गया तथा मजहरुल से इस पत्र के साथ उनके सम्बन्ध के बारे में एक अधिकारी द्वारा पूछताछ की गयी ।

मजहरुल हक को भारत में आये कुछ ही दिन हुए थे, तभी प्रथम विश्व युद्ध शुरु हो गया । अधिकारियों द्वारा उनकी गतिविधियों पर कड़ी नजर रखी जा रही थी । युद्ध के प्रति उनके रुख के बारे में एक सरकारी रिपोर्ट में निम्नलिखित वक्तव्य अंकित है :

"5 सितम्बर, 1914 को उन्होंने इस विषय में एक भाषण दिया जिसमें उन्होंने बताया मुसलमानों को किस प्रकार हिस्सा लेना चाहिए । उनके भाषण ने जो छाप छोड़ी वह स्पष्ट रूप से जर्मन-तुर्की पक्ष को प्रकट करती थी और यद्यपि उन्होंने यह कहा कि मुसलमानों को अंग्रेजों का वफादार रहना चाहिए, परन्तु यह इसलिए कहा गया क्योंकि तुर्की को इस युद्ध में आंच आने की कोई संभावना न थी । यदि तुर्की इंग्लैंड के साथ युद्ध में लिप्त होता तो पहलू बिलकुल भिन्न होता । भाषण से साफ जाहिर होता था कि उनकी वफादारी तभी तक थी जब तक सर्व-इस्लामवादी हित अप्रभावित थे । तुर्की के साथ युद्ध की घोषणा के तुरन्त बाद, श्रीमती बीसेन्ट अपने पत्र 'न्यू इंडिया' की ओर से इस बारे में उनके विचार जानने के लिए कि मुसलमानों को क्या रुख अपनाना चाहिए, उनके पास गयी । उन्होंने उत्तर दिया कि निजी शोक (तभी उनकी पत्नी की मृत्यु हुई थी) के कारण वे कुछ राय न दे सकेंगे। परन्तु कुछ दिनों बाद, यह देखकर कि भारत के मुसलमान वफादार हैं, उन्होंने तार्दथक सरकारी संकेत से एक घोषणापत्र निकाला, जिसमें कहा गया कि क्योंकि तुर्क छले गये हैं और आक्रमणकारी के रूप में युद्ध में शामिल हो गये हैं, इसलिए हमें अंग्रेजों के प्रति वफादार रहना चाहिए। यदि वे अन्य राष्ट्रों के अन्यायपूर्ण आक्रमणों से अपनी रक्षा कर रहे होते तो भारतीय मुसलमान तहे-दिल से उनका साथ देते ; परन्तु ऐसे आक्रमक दुःसाहसों में वे नहीं पड़ना चाहते । भारत के सात करोड़ मुसलमानों की

ठोस और वास्तविक शक्ति, केवल एक ऐसी भावुकता के लिए, जो तथ्यों से सर्वथा विपरीत हो बलिवेदी पर नहीं चढ़ायी जा सकती।"

युद्ध के आरम्भ में, मजहरुल हक ने सार्वजनिक मामलों में प्रकट रूप से रुचि लेना बन्द कर दिया। परन्तु सरकार को इस बारे में निश्चित जानकारी थी कि अबुल कलाम आजाद, मुहम्मद अली, हसन निजामी तथा अन्य बहुत से लोग गुप्त रूप से उनसे मिलने के लिए उनके पास आते-जाते रहते थे। मुहम्मद अली अपने केस के लिए धन एकत्र करने के वास्ते पटना आये थे, और मजहरुल हक ने उन्हें 200 रु० दिए थे। फिर मार्च 1915 में, जब लाहौर के बैरिस्टर और 'मुस्लिम रिव्यू' के सम्पादक ख्वाजा कमालुद्दीन पटना आये तो हक ने 'अंजुमन इसलामिया' के वार्षिक अधिवेशन में उनका परिचय कराया था। इसके बाद, 25 मई को, दिल्ली के मुख्य आयुक्त (चीफ कमिश्नर) द्वारा मुहम्मद अली और शौकत अली नजरबन्दी का विरोध करने के लिए बाकीपुर में उन्होंने एक सभा की। पहला प्रस्ताव, जिसमें आदेश पर पुनर्विचार की मांग की गयी थी, उन्होंने स्वयं पेश किया। अपने भाषण में उन्होंने स्वीकार किया कि दोनों भाइयों से उन्हें बेहद प्रेम था, उन्होंने मुसलमानों का प्यार अर्जित कर लिया था और मुसलमान उनकी पूजा करते थे तथा उनको कष्ट से बचाने के लिए सब प्रकार का त्याग करने को तैयार रहते थे। इसलिए, सरकार के लिए उचित था कि संकट की इस घड़ी में जबकि मुस्लिम समुदाय इतना अधिक क्षुब्ध था, क्षोभ के और कारण उपस्थितियां न किये जाते। इससे जांचकर्ता अधिकारी को इस बारे में सन्देह न रहा कि "वे तेजी से सर्व-इस्लामवादी आन्दोलनकारी बनते जा रहे हैं।" पकड़े हुए पत्रों से भी इस बात की पुष्टि हुई कि तुर्क समाचारपत्र के प्रतिनिधि त्यूफीक बेग के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। त्यूफीक बेग सारे राजद्रोहात्मक सर्वइस्लामवादी विचारों के प्रचार के लिए 1913-14 में भारत आये थे। 14 जुलाई, 1914 के पत्र में, त्यूफीक बेग ने हक को तुर्की सेना में भर्ती की प्रगति और युद्ध-प्रयत्नों के लिए जर्मन युद्ध-पोतों की प्राप्ति के बारे में लिखा था। 20 अगस्त, 1914 के एक दूसरे पत्र में, त्यूफीक ने निजली नूमानी (आजमगढ़) को, भारतीय मुसलमानों को तुर्की में घटित होने वाली घटनाओं की सही जानकारी देने के लिए तुर्की में एक उर्दू समाचार-

पत्र निकालने की योजना के बारे में लिखा था। उन्होंने मजहरुल हक की कुस्तुनतुनिया यात्रा का भी उल्लेख किया था और यह बताया था कि तुर्की सरकार ने उन्हें उनके अतिथि सत्कार की देखभाल के लिए नियुक्त किया था तथा वे तुर्की से 'अत्यन्त प्रसन्न' हो कर गये थे।[1]

रेड क्रेसेन्ट सोसायटी ने प्रमुख मुसलमान नेताओं से, जिनमें मजहरुल हक भी थे सम्पर्क स्थापित किया था और वैसी ही सहायता मांगी थी जैसी उन्होंने पहले बाल्कन युद्धों में दी थी। इसके अलावा, मजहरुल हक मध्य प्रदेश में छिन्दवाड़ा जेल में मुहम्मद अली से मिलने के लिए आने वालों में एक थे, परन्तु 'माननीय' होने और सरकार द्वारा उनके दर्जे को मान्यता दिये जाने के कारण, उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की गई। फिर भी, आसूचना गुप्तचर विभाग के निदेशक सर चार्ल्स क्लीवलैंड ने 23 मई, 1917 के एक नोट (टिप्पणी) में लिखा :

"भारतीय मुसलमानों के एक वर्ग के तुर्की-समर्थक विचार युद्ध में हमारे लिए बाधक बने हैं तथा 1914 में भारतीयों की भावनाओं के सम्बन्ध में की गयी गलत बयानी से जर्मनों को तथा तुर्की में अनवर य पार्टी को अपनी विश्वव्यापी युद्ध-योजनाओं में कुछ हद तक प्रोत्साहन मिला है। मुझे विश्वास है कि गलत बयानी करने वालों में मुख्य मजहर-उल-हक हैं, यही कारण है कि मैंने 30-4-1917 को अपनी टिप्पणी में लिखा था कि मजहरुल हक को सार्वजनिक प्रतिष्ठा के पद से हटाने में हमारी असमर्थता हमारी क्रिया-विधि पर एक धब्बा है। जब तक वे स्वतंत्र और सरकार की कृपा से 'माननीय' हैं, तब तक यह निश्चित है कि भारत में तुर्क-समर्थक पनपते रहेंगे। पंजाब में मजहरुल-हक जैसे व्यक्ति को राजनीतिक नेता के रूप में उसके पद पर ठहरने भी दिया जाता।"[2]

बाद में 'खिलाफत' और असहयोग आन्दोलन के दिनों में, मजहरुल हक ने, प्रान्त के विभिन्न भागों में आयोजित लगभग सभी सभाओं में, जिन्हें उन्होंने सम्बोधित किया, ब्रिटिश सरकार की तुर्की सम्बन्धी नीति की कटु आलोचना की। काबा तथा अन्य धार्मिक स्थानों की पवित्रता

1. और 2. इस विवरण के लिए हम मि० डेविड पेज के आभारी है। देखिए होम पोल० 2, पृ० 408-10, जुलाई 1917

ब्रिटिश सेना ने नष्ट कर दी थी। 14 जून, 1921 को, तुर्की के सम्बन्ध में, कठजूरी नदी (उड़ीसा) पर आयोजित एक सभा में उन्होंने कहा, 'सरकार कहती है कि सुलह हो गयी है, परन्तु हम कहते हैं कि कोई सुलह नहीं है। सुलह से पहले लायड जार्ज ने कहा था कि तुर्की की अखंडता भंग नहीं की जायेगी, परन्तु अब उन्होंने कहा है कि पैलेस्टाइन अब कभी तुर्की का राज्य क्षेत्र नहीं रहेगा। हमारे पवित्र स्थान यहूदियों और ईसाइयों को दे दिये गये हैं। अब कोई ···· इस से इन्कार नहीं कर सकता कि हमारे खलीफा नजरबन्द हैं। तुर्क हर चीज से वंचित कर दिये गये हैं। परन्तु तुर्की का एक छोटा सा देश अंगोरा है और ऐसी सूचना है कि वहां जहाज और सेना भेजी जा रही है।"

सरकार को यह भी जानकारी थी कि उनके मित्र और साथी मौलाना अबुल कलाम आजाद रांची में एक स्थानीय मस्जिद में तुर्की सेना की सफलता के लिए प्रार्थना कर रहे थे। रेड क्रेसेन्ट सोसायटी के कुछ सदस्य 1924 में पुनः भारत-यात्रा पर आने वाले थे। इस सम्बन्ध में भारत सरकार और भारतमन्त्री के मध्य पत्र-व्यवहार पहले ही शुरु हो चुका था। रेड क्रेसेन्ट सोसाइटी की पिछली गतिविधियों के कारण, भारत सरकार उन्हें इस देश की यात्रा के लिए अनुमति देने में बहुत हिचकिचा रही थी। परन्तु अनुमति न देना खतरा मोल लेना था। यह घोषणा की गयी थी कि रेड क्रेसेन्ट कमीशन मुस्तफा कमाल पाशा ने उन यूनानी मुसलमानों के लिए चन्दा इकट्ठा करने के लिए बनाया है, जिनकी अदला-बदली तुर्की ईसाइयों से की जानी है। सभी मुस्लिम देशों को शिष्टमंडल भेजने का निश्चय किया गया था। सरकार यह सोच रही थी कि लासेन की सन्धि के अमल में आते ही, शिष्टमंडल को किसी भी तर्क से अनुमति देने से इन्कार नहीं किया जा सकेगा। साथ ही, यदि उसके काम में सुविधा दी गयी, तो आशा थी कि वह ब्रिटिश सरकार के पक्ष में आ जाएगा। परन्तु यदि शिष्टमंडल को यात्रा की अनुमति तब तक न दी गयी जब तक कि वह और न रोकी जा सके, तो यह डर था कि भारत में आते ही वह बौखला जाएगा। वह यह शिकायत करेगा कि ग्रेट ब्रिटेन यूनानी ईसाई

शरणार्थियों के लिए तो ऋण देने को तैयार है, पर अपने तुर्की सहधर्मियों की सहायता के लिए चन्दा इकट्ठा करने से अपनी मुस्लिम प्रजा को रोकने में पूरी शक्ति लगा रहा है। अतः रेड क्रेसेन्ट शिष्टमंडल को यात्रा के लिए आवश्यक अनुमति दे दी गयी और वह फरवरी 1924 में भारत पहुंच गया। रयूफीक बेग भी इस शिष्टमंडल का एक सदस्य था। परन्तु तब तक मजहरुल हक सभी प्रयोजनों के लिए सक्रिय राजनीति से संन्यास ले चुके थे। शिष्टमंडल के सदस्यों से यह आश्वासन ले लिया गया था कि जब तक वे भारत में रहेंगे, तब तक वे राजनीतिक विषयों पर चर्चा न करेंगे। उनकी यात्रा संक्षिप्त ही रही। 12 मार्च को उन्होंने अपना भारत भ्रमण अचानक समाप्त कर दिया और स्वदेश लौट गये।

खिलाफत और असहयोग आन्दोलन

खिलाफत और असहयोग आन्दोलन दोनों मिलकर भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास में कई महत्वपूर्ण और प्रेरणाप्रद अध्याय बन गये हैं। लखनऊ समझौते के तुरन्त बाद वे संयुक्त राष्ट्रीय संघर्ष की संभावनाओं को लेकर चले थे। यद्यपि वे विभिन्न परिस्थितियों में शुरू हुए थे, फिर भी उन्होंने सरकार-विरोधी कारंवाई का एक जैसा कार्यक्रम बना लिया। परिणामस्वरूप तत्सम्बंधी घटनायें एक-दूसरी से इतनी अधिक मिल गयी हैं कि उनका अलग करना कठिन है।

इन आन्दोलनों का समय (1919–1923) भी मजहरुल हक के जीवन का सबसे अधिक रचनात्मक और व्यस्ततापूर्ण समय था। हिन्दू-मुस्लिम एकता के सच्चे दूत मजहरुल हक ने साम्प्रदायिक सद्भाव के तत्कालीन वातावरण को अपने क्रियाकलाप के लिए प्रेरणाप्रद और अत्यन्त अनुकूल पाया।

यह सुविदित है कि 'खिलाफत' संस्था पैगम्बर मुहम्मद की मृत्यु के बाद उत्पन्न हुई। यह कुछ धार्मिक-राजनैतिक समस्याओं को हल करने के लिए बनाई गयी थी। पहले चार खलीफाओं के समय को छोड़कर और कभी इस संस्था ने धार्मिक या राजनीतिक क्षेत्र में अधिक प्रभावी ढंग से काम नहीं किया, किन्तु इसका प्रतीकात्मक महत्व सदा ही बहुत अधिक रहा। हज के साथ-साथ यह संस्था भी संसार के समस्त मुसलमानों को जोड़ने वाली एक सामान्य और परिदृश्य कड़ी थी। सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में, आटोमन तुर्कों द्वारा मिस्र के जीत लेने के साथ ही, 'खलीफा' की पदवी भी आटोमन सुल्तान को मिल गयी, परन्तु बहुत दिनों तक यह सुप्तावस्था में पड़ी रही, क्योंकि भारत के मुगल बादशाह आटोमन सुल्तानों

को अपने राजनीतिक समकालीन मानते थे, धार्मिक प्रवर कभी नहीं मानते थे। अठारहवीं शताब्दी में हुए इन दो प्रमुख मुस्लिम शक्तियों के सामान्य अधःपतन ने उनके कुछ बुद्धिजीवियों में समान भाग्यहीनता का भाव पैदा कर दिया, जिससे समान इस्लामी विरासत की चेतना जाग्रत हुई।

'महान पूर्वी प्रश्न' ने, जो 19वीं शताब्दी में बहुत दिनों तक अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर छाया रहा, अप्रत्यक्ष रूप से खिलाफत की संस्था को नया जीवन दे दिया। रूस के अतिक्रमणों से जर्जर तुर्की साम्राज्य को सहारा देने के प्रयत्न में, ब्रिटिश सरकार यह उपयोगी समझती थी कि तुर्की सुल्तान के पद को मुसलमानों के खलीफा के रूप में उछाला जाए और इस प्रकार तुर्की की क्षेत्रीय अखंडता के प्रश्न को एक अधिक व्यापक इस्लामी प्रश्न से जोड़ दिया जाए। रूस-तुर्की युद्ध (1876) के प्रारम्भ में, भारत सरकार ने भारतीय मुसलमानों की तुर्की के प्रति सहानुभूति और समर्थन प्रकट करने वाली विभिन्न गतिविधियों को प्रोत्साहित भले ही न किया हो, पर अनदेखा अवश्य कर दिया। परन्तु ऐसी गतिविधियों को प्रोत्साहन देकर ब्रिटिश सरकार एक खतरनाक खेल खेल रही थी। कुछ तत्कालीन अंग्रेजी समाचारपत्रों तथा कुछ सोवियत समाचारपत्रों ने आगाह किया कि तुर्की तथा भारतीय मुसलमानों के मध्य सम्पर्क को बढ़ावा देने से ब्रिटिश सरकार स्वयं संकट में फंस जायगी। यह चेतावनी सही निकली, क्योंकि प्रथम विश्व युद्ध में तुर्की स्वयं उस धुरी में शामिल हो गया।

युद्ध के दौरान, लायड जार्ज ने भारतीय मुसलमानों से पक्का वायदा किया था कि तुर्की की क्षेत्रीय अखंडता भंग नहीं की जाएगी। इसलिए भारतीय मुसलमानों को विश्वास था कि खलीफा का आधिपत्य जहूरियत-उल अरब पर, जिसमें सभी धार्मिक स्थानों सहित मेसोपोटामिया, अरब, सीरिया और पेलस्टाइन शामिल थे, कायम रहेगा। परन्तु आटोमन साम्राज्य के भावी विखंडन ने उन्हें बहुत निराश कर दिया। खिलाफत के भविष्य पर विचार करने के लिए, 16 फरवरी, 1919 को पटना में एक सभा की गयी। सभा की अध्यक्षता करते हुए हसन इमाम ने एक भाषण दिया, जिसने श्रोताओं को अति प्रभावित किया। उन्होंने उन्हें

तुर्की की प्राचीन महानता को याद दिलायी और उन प्रयत्नों की भर्त्सना की, जो सुल्तान को 'खिलाफत' से हटाने के लिए किये जा रहे थे। मुसलमान सैनिकों ने युद्ध जीतने में ब्रिटेन की सहायता की थी और तुर्की को आत्म-निर्णय के उस सिद्धान्त के लाभ से वंचित नहीं किया जाना चाहिए था, जिसके लिए वचनबद्ध होकर युद्ध लड़ा गया था।

मजहरुल हक ने जो पहले ही कुछ अग्रणी तुर्की राजनीतिज्ञों के सम्पर्क में आ गये थे और सर्व-इस्लामवादी आन्दोलन के लिए कुछ काम कर चुके थे, स्वभावतः खिलाफत आन्दोलन में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। उन्होंने उपर्युक्त सभा में भी भाषण दिया और तुर्की के युद्ध में प्रवेश के लिए मित्र राष्ट्रों को दोष दिया। पटना के आयुक्त ने प्रतिवेदित किया कि "सुल्तान की स्थिति और इस्लाम के पवित्र स्थानों की अभिभावकता के उसके अधिकार के प्रश्न पर भावना पहले ही भड़कने लगी है।"

जिस समय भारतीय मुसलमान तुर्की के सुल्तान और खलीफा के भाग्य के बारे में चिन्तित और उत्तेजित थे, उसी समय कुछ अन्य युद्धोत्तर घटनाओं ने देश में अधिक व्यापक एवं सामान्य अशान्ति पैदा कर दी।

प्रत्याशित एवं सन्तोषजनक राजनीतिक सुधारों की बजाय, सरकार 'लगड़े' मान्टफोर्ड सुधारों और रॉलट एक्ट को लेकर सामने आयी। इस एक्ट ने सरकार को उन सभी गतिविधियों को कुचलने के लिए नये और मनमाने अधिकार दे दिये, जिन्हें वह राजद्रोहात्मक समझे। इस एक्ट ने भारतीय जनता को अधिक उत्तेजित कर दिया।

इस स्थिति का मुकाबला करने के लिए, महात्मा गांधी ने अपना सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया। 30 मार्च का दिन देशभर में हड़ताल, उपवास और प्रार्थना दिवस-मनाने के लिए निश्चित किया गया। बाद में तारीख बदल कर 6 अप्रैल कर दी गयी। परन्तु दिल्ली में समय पर इस परिवर्तन की सूचना न मिलने के कारण हड़ताल 30 मार्च को ही हो गयी। पुलिस द्वारा जुलूस पर गोली चलाने से पांच मौतें हुई और अनेक व्यक्ति हताहत हुए।

पटना के स्थानीय नेता इन घटनाओं को दिलचस्पी के साथ देख रहे थे। स्थानीय समाचारपत्र 'सर्चलाइट'' रोलट बिलों के विरुद्ध आन्दोलन तेज करने तथा गांधीजी के अभियान को समर्थन देने में जुटा हुआ था। 4 अप्रैल को स्थानीय राजनीतिज्ञों की एक बैठक हुई, जिसमें 6 अप्रैल को 'विनम्रता दिवस' मे भाग लेने का निश्चय किया गया। अगले दिन शाम को मजहरुल हक के निवास-स्थान पर एक और बैठक हुई, जिसमें विशेष ब्यौरा तैयार किया गया। अधिक जोर इस बात पर दिया गया कि दिल्ली की घटना ने हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दूसरे से बांध दिया है। हसन इमाम ने इनमें बढ़-चढ़ कर भाग लिया। सरकार की गोपनीय पाक्षिक रिपोर्ट (18 अप्रैल, 1919) में इस सम्बन्ध में निम्नांकित ब्यौरा दिया गया है : "पटना मे हसन इमाम को व्यक्तिगत प्रभाव बहुत अधिक है और जिस क्षण उन्होने शामिल होने का निश्चय किया उसी क्षण प्रदर्शन की सफलता निश्चित हो गयी। जिन लोगों ने 6 अप्रैल के जुलूस और सभा में भाग लिया, उनकी संख्या 10 हजार से एक लाख के मध्य आंकी गयी है। एक लाख का अनुमान हसन इमाम का है, जो जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे और जिन्होंने उस दिन की घटना का समाचार तार द्वारा स्थानीय सरकार को भेजा था। उन्हें केवल सभा की विशालता का ही नहीं, कार्यवाही को सुव्यवस्थित ढग से चलानें का भी श्रेय मिला, क्योंकि उनकी प्रार्थना पर जिलाधीश पुलिस को यथा सम्भव दूर रखने और शान्ति एवं व्यवस्था की जिम्मेदारी उनकी व्यक्तिगत गारन्टी पर छोड़ने को राजी हो गये थे।....."

रिपोर्ट के अनुसार, इस अवस्था में भी, यह निश्चित न था कि सभी स्थानीय राजनीतिज्ञ सत्याग्रह आन्दोलन में शामिल हो जायेंगे। परन्तु पजाब जाते हुए मार्ग मे पलवल स्टेशन पर महात्मा गांधी की गिरफ्तारी (10 अप्रैल) के समाचार ने इस प्रश्न को तुरन्त पक्का कर दिया। 'सर्चलाइट' ने जनता को शिक्षित करने की अपनी भूमिका प्रशंसनीय ढंग से निभायी। 11 अप्रैल की शाम को एक सभा हुई जिसमें हसन इमाम ने सार्वजनिक रूप से आन्दोलन मे शामिल होने की प्रतिज्ञा की। मजहरुल हक तथा अन्य सभा से पहले ही प्रतिज्ञा कर चुके थे। इस प्रयोजन के लिए एक रजिस्ट्रेशन केन्द्र राजेन्द्र प्रसाद के निवास-स्थान पर खोला।

इन नेताओं ने प्रेस कानूनों को तोड़ने के लिए महात्मा गांधी के नेतृत्व में चलने के अपने इरादे की घोषणा की।

शीघ्र ही जलियांवाला बाग हत्याकांड के समाचार ने संपूर्ण राष्ट्र को आतंक एवं क्रोध के भावों से भर दिया। एक गुप्त रिपोर्ट के अनुसार इसने 'सम्पूर्ण बिहार की जनता पर निश्चित रूप से क्षोभक प्रभाव डाला तथा सरकार एवं स्थानीय अधिकारियों के विरुद्ध क्रोध और असुरक्षा की भावना पैदा कर दी। सरकार के दुश्चक्रों के बारे में तरह-तरह की अफवाहें फैलने लगी और सरकार के लिए सबसे अधिक चिन्ता की बात थी हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य एकता का तेजी से बढ़ना।' इंडिया 1919 के अनुसार, 'सामान्य उत्तेजना की एक विशेषता हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य अभूतपूर्व भाईचारा थी।'

लगभग इसी समय शान्ति समझौतों की शर्तों की जानकारी जनता को मिली। शान्ति-सन्धियों के परिणामस्वरूप तुर्की को अपनी भूमि के एक भाग से वंचित कर दिया गया। युद्ध के दौरान सम्पन्न गुप्त करारों के आधार पर ब्रिटेन, फ्रांस और सोवियत संघ ने तुर्की साम्राज्य को वस्तुतः आपस में बांट लिया था। नयी क्रान्तिकारी सोवियत सरकार ने तो अपना प्रस्तावित हिस्सा छोड़ दिया था, परन्तु ब्रिटेन और फ्रांस ने तुर्की साम्राज्य के कुछ बहुत अच्छे हिस्से संरक्षित प्रदेशों (प्रोटक्टोरेट) के रूप में हथिया लिये। सुल्तान की स्थिति सचमुच कैदी जैसी रह गयी। इस व्यवस्था की बहुत आलोचना हुई। इसे ब्रिटिश सरकार का नीचतापूर्ण विश्वासघात बताया गया और केवल भारत के समस्त मुसलिम समुदायों ने ही नहीं अन्य समुदायों ने भी महात्मा गांधी के पथ प्रदर्शन में खिलाफत के प्रश्न पर आन्दोलन चलाने का निश्चय कर लिया। नवम्बर (1919) के आरंभ में महात्मा गांधी ने समाचारपत्रों में एक पत्र छपवाया, जिसमें तुर्की के प्रति ब्रिटिश रुख के विरोध में शान्ति उत्सवों का बहिष्कार करने की सलाह दी गयी। बिहार ने तुरन्त गांधीजी के आह्वान का अनुपालन किया। हसन इमाम ने आन्दोलन का नेतृत्व किया और 30 नवम्बर को पटना में एक सार्वजनिक सभा हुई जिसमें उन्होंने शान्ति-उत्सवों के बहिष्कार की जोरदार वकालत की। अन्य वक्ताओं ने भी तुर्की के भाग्य

पर आंसू बहाये और आह्वान का पूर्ण समर्थन किया। फलस्वरूप वकील वर्ग सामूहिक रूप से शान्तिउत्सवों से अलग रहा। रांची में, जहां मौलाना आजाद का प्रभाव असाधारण था, बहिष्कार अधिक जोरदार था। किसी मुसलमान ने उत्सवों में भाग नही लिया। किसी के घर में रोशनी नही हुई और न किसी मुसलमान बच्चे ने स्कूल के खेलों में भाग लिया। दुकानें भी बन्द रहीं और 14 दिसम्बर की रात को मुसलमान का एक जत्था मुसलमानों की शिकायतें दोहराता हुआ तथा उत्सवों में भाग न लेने की सबसे प्रार्थना करता हुआ, बाजार मे घूमता रहा। रांची में 'मदरसा' मे 13 दिसंबर को छुट्टी नही मनायी गयी। इसके बजाय, लगभग सभी विद्यार्थी अपनी बांहों में काली पट्टियां बांध अपनी-अपनी कक्षाओं में उपस्थित रहे। बिहार के अन्य भागों में भी खिलाफत के प्रश्न पर काफी उत्तेजना रही।

फरवरी और मार्च के महीनों में खिलाफत का प्रश्न भारतीय राजनीति पर छाया रहा। इंग्लैंड मे तुर्की-विरोधी आन्दोलन और कुस्तुनतुनिया पर कब्जा करने के लिए सेना के प्रस्थान ने आग में घी डालने का काम किया। मार्च के आरम्भ में मौलाना मुहम्मद अली के नेतृत्व में एक मुस्लिम शिष्टमंडल इंग्लैंड गया और ब्रिटिश प्रधानमन्त्री से मिला। अपने मामले को शान्ति सम्मेलन (पीस कान्फेंस) की सर्वोच्च परिषद (सुप्रीम कौंसिल) के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए अनुमति देने की उसकी प्रार्थना अस्वीकृत कर दी गयी। प्रधानमन्त्री लायड जार्ज ने शिष्टमंडल को उत्तर दिया कि तुर्की को उन क्षेत्रों के रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती जो उसके (तुर्की के) नही है। इस उत्तर से भारत में लोगों की भावनाओं को बहुत ठेस पहुंची। इसलिए 19 मार्च का दिन राष्ट्रीय शोक, उपवास प्रार्थना और हड़ताल के लिए निश्चित किया गया। महात्मा गांधी ने पुनः घोषणा की कि यदि तुर्की के साथ शान्ति-सन्धि की शर्तें भारतीय मुसलमानों की भावनाओं के अनुकूल न रखी गयी तो वे फिर असहयोग आन्दोलन का नेतृत्व संभाल लेंगे।

19 मार्च को सारे बिहार में हड़ताल रही। भागलपुर, मुंगेर, डालटनगंज, आरा और मुजफ्फरपुर मे आमतौर से दुकानें बन्द रहीं। अनेक

स्थानों पर प्रस्ताव पास कर ब्रिटिश सरकार के रवैये पर घोर असन्तोष प्रकट किया गया। मुजफ्फरपुर में एक प्रस्ताव मे कहा गया कि 'तुर्की साम्राज्य का विच्छेद यतः मुस्लिमो की धार्मिक भावनाओं और सिद्धांतों को आघात पहुंचाता है, अतः इससे भारतीय मुसलमानों का वफादारी में अनुचित रूप से खिचाव पैदा हो सकता है।' शाहबाद, मुजफ्फरपुर, गया, मुंगेर और भागलपुर जिलों मे हिन्दुओं ने प्रदर्शनों में प्रमुख भाग लिया। मानभूम जिले में एक रोचक विशेषता यह रही कि मारवाड़ियों ने भी सक्रिय भाग लिया।

अशान्ति के इसी वातावरण में पंजाब के अत्याचारों पर गैर सरकारी रिपोर्ट प्रकाशित हुई (25 मार्च)। सर माइकेल ओडायर की नृशसता स्वभावतः सार्वजनिक निन्दा का विषय बन गयी। यह निश्चय किया गया कि पिछले वर्ष (1919) 6 से 13 अप्रैल तक के सप्ताह में घटी घटनाओं की याद में इस वर्ष 6 से 13 अप्रैल तक के सप्ताह को देश में राष्ट्रीय सप्ताह के रूप मे मनाया जावे। तदनुसार सप्ताह का कार्यक्रम तैयार करने के लिए 6 अप्रैल को पटना मे एक सार्वजनिक सभा आयोजित की गयी। सभा के मुख्य आयोजक मजहरुल हक, के०बी० दत्त, सरफराज हुसैन खाँ और हसन इमाम के दामाद एस० सामी थे। बाद में उसी दिन शाम को एक और सभा हुई जिसकी अध्यक्षता मजहरुल हक ने की। सभा ने रौलट एक्ट की निन्दा की और जलियावाला बाग स्मारक निधि के लिए चन्दा एकत्र करने के वास्ते एक समिति गठित की। उसके बाद, विभिन्न स्थानों पर प्रतिदिन सभायें होती थीं, जिनमे खिलाफत के प्रश्नों पर विचार किया जाता था तथा खलीफा की सुरक्षा के लिए प्रार्थनायें की जाती थीं। मजहरुल हक तथा अन्य स्थानीय नेताओं के निमन्त्रण पर, मौलाना शौकत अली बिहार आये और उन्होंने अनेक सभाओं को सम्बोधित किया। इन सभाओं में सरकारी नौकरी के बहिष्कार का उपदेश दिया जाता था तथा सरकार के साथ सहयोग न करने की धमकी दी जाती थी। स्वयं शौकत अली ने घोषणा की कि यदि खिलाफत का प्रश्न ऐसे ढंग से तय किया गया, जो मुसलमानों के अनुकूल न हो तो वे स्वयं को सरकार की प्रजा अथवा ताज के प्रति वफादारी के किसी बन्धन से बंधा समझना बन्द कर

देंगे । उस हालत में मुसलमानों को जिहाद (धार्मिक संघर्ष) और हिजरत (निष्क्रमण) में से एक को चुनना होगा । उनके पास हथियार न थे, इसलिए जिहाद असम्भव था। अतः उन्हें देश छोड़ना पड़ेगा । परन्तु सरकार को यह जानकारी थी कि शौकत अली ने युवा मुसलमानों को गुप्त रूप से यह सलाह दी थी कि वे खुदा के आदेशों का पालन करें अर्थात् यदि खिलाफत के सम्बन्ध में उनकी इच्छाओं की उपेक्षा की जाये तो युद्ध की घोषणा कर दें ।

परन्तु विधान-परिषदों (लेजिस्लेटिव कौंसिलों) के बहिष्कार का निर्णय अभी नहीं किया गया था । 1919 की सुधार योजना के अधीन चुनाव पास आ रहे थे। मजहरुल हक ने अनेक जिलों में चुनाव दौरे किये और कांग्रेसी प्रत्याशियों के पक्ष में प्रचार किया । उन्होंने एक सभा को मोतीहारी में 18 अप्रैल को, तथा दूसरी को छपरा में 5 मई को, सम्बोधित किया । इन सभाओं में उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम-एकता के महत्व पर जोर दिया । उन्होंने मुसलमानों को याद दिलाया कि खिलाफत के प्रश्न पर हिन्दुओं ने उनका साथ दिया था, इसलिए उन्हें सरकार के दोनों सम्प्रदायों में वैमनस्य पैदा करने के प्रयत्नों का शिकार नहीं होना चाहिए । उन्हें अपने हिन्दू भाइयों की धार्मिक भावनाओं का आदर करना चाहिए तथा गोवध नहीं करना चाहिए । ब्रिटिश सरकार ने खिलाफत के प्रश्न पर उनके साथ विश्वासघात किया है और 'चोर की तरह मेसोपोटामिया अपने लिए चुरा लिया है तथा तुर्की साम्राज्य के टुकड़े दूसरों को बांट दिये हैं ।' वे मुसलमानों को जिहाद घोषित करने की सलाह दे सकते थे परन्तु यह असम्भव था, क्योंकि वे शस्त्रहीन थे । इसलिए बदले के रूप में, वे ब्रिटिश माल का बहिष्कार कर सकते थे ।

15 और 16 मई को फुलवाड़ी में एक उलेमा-सम्मेलन हुआ । उसमें प्रान्त से बाहर के आलिम भी शामिल हुए जिनमें प्रमुख कानपुर के मौलाना कादिर आजाद सुभानी और मथुरा के मौलाना अब्दुल वजीद थे । सम्मेलन में कुछ वक्ताओं ने श्रोताओं को जिहाद के लिए प्रेरित किया । परन्तु बहुमत असहयोग के पक्ष में था। सरकार अपनी ओर से मुसलमानों पर यह छाप डालने की कोशिश कर रही थी कि वे हिन्दुओं के

हाथों में खेल रहे हैं, क्योंकि हिन्दुओं का वस्तुतः खिलाफत से कोई सम्बन्ध न था।

इसी दरम्यान, केन्द्रीय खिलाफत समिति की एक विशेष बैठक इलाहाबाद में हुई (जून) और वहां स्वीकृत एक प्रस्ताव के अनुसार एक हस्ताक्षर अभियान आरंभ किया गया। यह भी निश्चय हुआ कि वाइसराय को एक ज्ञापन दिया जाए। इस आन्दोलन में अग्रणी मजहरुल हक, ए० सामी और नूरुल हसन थे। 1अगस्त को पटना में आयोजित एक बैठक में, नूरुल हसन ने प्रान्तीय विधानमंडल से त्यागपत्र दे दिया। फुलवाड़ी के शाह बदरुद्दीन ने शम्सुल उलेमा की उपाधि और शाह सुलेमान ने आनरेरी (अवैतनिक) मजिस्ट्रेट का पद छोड़ दिया। 15 अगस्त को मजहरुल हक के घर पर एक हिजरत कमेटी बनायी गयी। फुलवाड़ी के शाह मुहीउद्दीन उसके अध्यक्ष नियुक्त किये गये। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार, इस समय तक प्रान्त में खिलाफत आन्दोलन यथार्थ में मजहरुल हक और गुलाम इमाम के नियन्त्रण में आ गया था। उन्होंने कलकत्ता में खिलाफत सम्मेलन में विशेष प्रतिनिधि उलेमा को भेजने के विशेष प्रयत्न किये।

बिहार प्रान्तीय कांग्रेस समिति और बिहार प्रान्तीय सम्मेलन ने भी असहयोग के पक्ष में प्रस्ताव पास किये। प्रान्तीय सम्मेलन ने असहयोग के सिद्धांतों को अमल में लाने के लिए एक व्यावहारिक योजना तैयार करने के वास्ते एक समिति बनाने का निश्चय किया। तदनुसार, मजहरुल हक, राजेन्द्र प्रसाद और शाहमुहम्मद जुबेर की एक समिति बनायी गयी। सम्मेलन को इस बात का श्रेय है कि सबसे पहले[1] स्वराज्य की प्राप्ति को उसी ने असहयोग आन्दोलन के एक उद्देश्य के रूप में खिलाफत और पंजाब के अत्याचारों की क्षतिपूर्ति से जोड़ा।

कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन (4 से 10 सितम्बर) के तुरन्त बाद, मजहरुल हक और सात अन्यों ने, कांग्रेस के प्रस्तावों के अनुसार कौंसिल के चुनावों से अपनी उम्मीदवारी वापस ले ली। मजहरुल हक ने हटने की घोषणा एक पत्र में की, जो 'सर्चलाइट' (19 सितम्बर, 1920) में छपा। घोषणा इस प्रकार थी :

[1] प्रसाद, राजेन्द्र, महात्मा गांधी और बिहार, पृष्ठ 41, लेकिन भो०पट्टा०सी० सीतारमैया, कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ 206) विजयराघवाचारी का इसका श्रेय देते हैं।

"प्रत्येक कांग्रेसी का यह कर्तव्य है कि वह संस्था की बैठक में पारित कांग्रेस के प्रस्ताव के निदेशों का पालन करे। कांग्रेस ने प्रत्येक क्षेत्र में सरकार के साथ असहयोग की नीति अपनायी है। खिलाफत सम्मेलन और मुस्लिम लीग द्वारा भी ऐसे ही प्रस्ताव पास किये हैं। सबसे पहला और मुख्य प्रस्ताव यह है कि जो चुनाव के लिए उम्मीदवार के रूप में खड़े हुए हैं वे सब अपनी उम्मीदवारी वापस ले लें। मैंने सारन जिले के मुसलमानों से वोट देने को कहा था। परन्तु इन संस्थाओं के प्रस्ताव के अनुपालनार्थ मैं अपनी उम्मीदवारी वापस लेता हूं और चुनावों में भाग लेने से इन्कार करता हूं। एक मुसलमान की हैसियत से मैं ऐसी सरकार से कभी सहयोग नहीं कर सकता जो इस्लाम को नष्ट करने पर तुली हुई हो। एक भारतीय की हैसियत से मैं ऐसी सरकार के साथ काम नहीं कर सकता, जिसके हाथ पंजाब के मेरे देशवासियों के खून से रंगे हैं। जब तक उनकी शिकायतें दूर न होंगी तब तक सहयोग का प्रश्न ही नहीं उठता। आपके सुप्रतिष्ठित पत्र के माध्यम से मैं अपने उन अगणित मित्रों को धन्यवाद देता हूं जो मेरे चुनाव को सफल बनाने के लिए मेरे साथ काम कर रहे थे। अब प्रान्त के सभी मतदाताओं के लिए मेरा परामर्श है कि वे उन लोगों को अपना वोट न दें जो कांग्रेस के प्रस्ताव का उल्लंघन करने और एक क्रूर एवं अधर्मी सरकार से सहयोग करने का इरादा रखते हैं।"

कुछ स्थानीय सरकारी अधिकारियों ने इस पत्र को अत्यन्त आपत्ति-जनक ठहराया और प्रेस तथा लेखक दोनों के विरुद्ध कार्रवाई करने का विचार किया। 'सर्चलाइट' लगातार असहयोग आन्दोलन का समर्थन ही नहीं कर रहा था अपितु पहले एक लेख में उसने घोषणा की थी कि यदि 'नौकरशाही' के पास रौलट एक्ट है तो जनता के पास असहयोग।' परन्तु भली प्रकार विचार करने के बाद परिषद के उपराज्यपाल ने निश्चय किया कि मजहरुल हक या प्रेस के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई करना उचित न होगा। 'सर्चलाइट' पर अधिक निगरानी रखने का आदेश दे दिया गया और कह दिया गया कि यदि वह फिर कोई अपराध करें तो उस से पुनः जमानत मांगी जाए।

अब मजहरुल हक पूरी शक्ति से आन्दोलन में जुट गये। उन्होंने न्यायालय में अपनी अच्छी-खासी प्रैक्टिस छोड़ दी और अपने दोनों लड़के पटना न्यू कालेज से हटा लिए। उनके रहन-सहन के ढंग में भी अकस्मात परिवर्तन आ गया। इस घटना का उल्लेख करते हुए सच्चिदानन्द सिन्हा ने कहा है, "1920 में जब वे 'असहयोगी' बने तब तक हक सबसे अच्छी पोशाक पहनने वाले भारतीयों में थे परन्तु महात्मा जी का नेतृत्व स्वीकार करते ही हक अकस्मात परिवर्तित हो गये। उन्होंने अपने सुरुचिपूर्ण सुन्दर सिलाईवाले सूट ताले में बन्द कर दिये, दाढ़ी-मूंछ न रखने वाले आदमी से बदल कर अक्षरशः 'दाढ़ी वाला थोता' बन गये, अपना रहन-सहन का विदेशी ढंग बदल लिया, अपने लिए पटना से बाहर एक स्थान बनाया, जिसका नाम उन्होंने सदाकत आश्रम (सत्य निवास) रखा, मोटर कार का इस्तेमाल छोड़ दिया, मांस और मदिरा को तिलांजलि दे दी और स्वयं को एक वास्तविक सन्यासी के रूप में बदल लिया।[1]"

असहयोग आन्दोलन के दौरान, मजहरूल हक अपनी सारी ताकत मुख्य रूप से तीन उद्देश्यों की पूर्ति में लगा रहे थे। सरकार के विरुद्ध की योजना, राष्ट्रीय स्कूलों का संगठन, और साम्प्रदायिक एकता को बढ़ावा। वे जनता के सभी वर्गों में लोकप्रिय थे, परन्तु विद्यार्थी समाज पर उनका प्रभाव चुम्बक वत् था। उन्होंने असहयोग आन्दोलन के हित को आगे बढ़ाने के लिए इस समाज के उत्साह और शक्ति का सदुपयोग किया। उन्होंने 10 और 11 अक्तूबर को डाल्टनगंज में सी० एफ० एण्ड्रूज की अध्यक्षता में आयोजित बिहार छात्र सम्मेलन में भाग लिया। अब तक केन्द्रीय छात्र संघ के नियम लड़कों को राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने से रोक देते थे। परन्तु मजहरूल हक ने एक लम्बे भाषण में छात्रों का राजनीति में भाग लेना उचित ठहराया और सम्बन्ध नियमों में समुचित संशोधन प्रस्तुत किये। परन्तु स्वागत समिति के अध्यक्ष ने इसका विरोध किया और अन्त में यह निश्चय हुआ कि इस प्रश्न पर सम्मेलन के एक विशेष अधिवेशन में विचार किया जाए। फिर

1. सिन्हा, एस०, "सम एमिनेंट बिहार कन्टम्पोरेरीज", पटना, 1944, पृ० 81-82।

भी, एक प्रस्ताव पास कर केन्द्रीय संघ और जिला संघ से प्रार्थना की गयी कि वे छात्रों से यह प्रतिज्ञा करायें: "मैं सत्यनिष्ठा से घोषणा करता हूं कि मैं कोई कपड़ा अथवा पहनने के वस्त्र तब तक इस्तेमाल न करूंगा जब तक मुझे यह सन्तोष न हो जाएगा कि यह स्वदेशी है।" छात्र समुदाय में मजहरुल हक के बाद के काम और बिहार विद्यापीठ की स्थापना पर अन्यत्र विचार किया जाएगा।

मजहरुल हक का क्रियाकलाप छात्र समुदाय तक ही सीमित न था। अपनी डाल्टनगंज यात्रा में मिले अवसर से लाभ उठाकर उन्होंने असहयोग आन्दोलन के बारे में लोगों को शिक्षित करने के लिए वहां एक सार्वजनिक सभा की। इससे पहले 8 अक्तूबर को उन्होंने गया में एक असहयोग सभा में भाषण दिया था।

उन्होंने बिहार और उड़ीसा प्रान्तों के विस्तृत दौरे किये और अत्यन्त जोशीले भाषण दिये। प्राय: डा० राजेन्द्र प्रसाद भी उनके साथ रहते थे। जब कभी यह महसूस होता कि लोग आन्दोलन में पर्याप्त रुचि नहीं ले रहे, तो स्थानीय नेता अविकल्प रूप से मजहरुल हक से सहायता मांगते थे और वे कभी पीछे न हटते थे। 27 अक्तूबर, 1920 को हिल्सा में दिये गये उनके भाषण की सी० आई० डी० रिपोर्ट से उद्धरण नीचे दिये जा रहे हैं। इससे आन्दोलन के लिए उनके उत्साह का ही नहीं, जनता में उसकी भारी लोकप्रियता का भी साफ-साफ पता चलता है।

"मुख्य संगठनकर्ता एक जगन्नाथ पाठक था, जो सभा के खर्च के लिए तथा मजहरुल हक, चन्द्रवंशी सहाय, पंडित जीवानन्द और डा० गुलाम इमाम के लिए एक कार के किराये-भाड़े के वास्ते धन एकत्र करने में विशेष रुचि ले रहा था। लगभग 1,000 आदमी उपस्थित थे और करारी के शाह गफूर अध्यक्ष की कुर्सी पर थे। श्रोताओं से मजहरुल हक का परिचय कराते हुए शाह गफूर ने कहा कि सरकार ने हमारे धार्मिक अधिकारों और विशेषाधिकारों का हनन किया है, इसलिए अब उस पर विश्वास नहीं करना चाहिए। 'जिस प्रकार भगवान कृष्ण ऐसे

ही समय में सत्य की रक्षा के लिए पैदा हुए थे, उसी प्रकार मजहरुल हक, कृष्ण की भांति हमारे संकट में हमारी सहायता के लिए पैदा हुए हैं।'

सभा को संबोधित करते हुए मजहरुल हक ने भारतीयों को सलाह दी कि वे शत्रु (यूरोपियनों) की आदतों, आचारों और रीतियों को छोड़ दें। वे पिछले 150 वर्षों से भारतीयों के धन को लूट रहे हैं और उन्हें नीचा दिखा रहे हैं। मक्का और मदीना गत 1300 वर्षों से मुसलमानों के हाथ में रहे हैं, परन्तु गवर्नर जनरल द्वारा दिये गये आश्वासनों के बावजूद यूरोपीय इन पवित्र नगरों को ध्वस्त करने की कोशिश कर रहे हैं। मक्का पर बम गिराये गये हैं और अध्यक्ष शाह गफूर ने यह देखा है। वे (हक) उन्हें भड़काना तो नहीं चाहते थे, परन्तु उन्होंने हिल्सा की जनता की ओर से सरकार से पूछा कि यह खबर तीन वर्ष तक क्यों छिपा कर रखी गयी। क्या सरकार यह सोचती थी कि भारत के मुसलमानों का इन पवित्र स्थानों से कोई लगाव न था। उन्हें मक्का में लड़ने की क्या आवश्यकता थी? कल हिन्दू धर्म के साथ भी ऐसा ही सलूक किया जाएगा। यदि वे अपनी रक्षा चाहते हैं तो उनमें एकता होनी चाहिए, क्योंकि यूरोपियनों से न्याय की आशा नहीं की जा सकती।

उसी दिन हक ने अरावल में एक और सभा को सम्बोधित किया। उसमें डा० राजेन्द्र प्रसाद, अब्दुलबारी और चन्द्रवंशी सहाय ने भी भाषण दिये। परन्तु इस सभा की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसका आयोजन किसान सभा ने किया था और भारत धर्म महामंडल के पंडित गंगा विष्णु मिश्र ने भी उसी मंच से असहयोग के पक्ष में भाषण दिया था। सभा की अध्यक्षता एक स्थानीय जमींदार सूरज सिंह ने की थी। यहां भी मजहरुल हक ने ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों का बखान किया। 'पंजाब जुल्म' का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा, "पंजाब में इस बेईमान और जलील गवर्नमेंट ने हजारों का खून और बे-अस्मती की।" इस लिए उन्होंने श्रोताओं को सलाह दी कि वे ऐसी सरकार से सहयोग न करें। उन्होंने श्रोताओं को बताया कि इन्हीं कारणों से गांधीजी स्वराज्य चाहते हैं और उसके साधन के रूप में उन्होंने असहयोग का सुझाव दिया

है। उन्होंने मतदाताओं से प्रार्थना की कि चुनावों में वे मतदान न करें। उन लोगों के नाम लिखने के लिए, जिन्हें वोट न डालने के लिए मनाया जा सकता था, छपे हुए फार्म शाह उमेर को दे दिये गये।

हक ने 30 अक्तूबर को इस्लामपुर (पटना) की सभा को और 1 नवम्बर को बिहार शरीफ की सभा को सम्बोधित किया। इन सभाओं में वे लगभग एक ही ढंग से बोले। उनके भाषणों ने स्वभावतः स्थानीय अधिकारियों में भारी खलबली पैदा कर दी। यह सुझाव दिया गया कि मजहरुल हक को गिरफ्तार करके उन पर रोक लगायी जाए। परन्तु उपराज्यपाल सहित उच्च अधिकारियों ने ऐसे कदम को उचित नहीं समझा। भारत सरकार को भेजे गये पत्र में निम्नलिखित महत्वपूर्ण विचार प्रकट किये गये: "उपराज्यपाल ने परिषद में सावधानी से विचार किया है कि कैसे आगे बढ़ना अच्छा रहेगा। वे उस खतरे को भली भांति समझते हैं जो आन्दोलनकारियों की शरारतपूर्ण गतिविधियों को रोकने के लिए सरकार द्वारा कोई प्रयत्न न कर ऐसे भाषण स्वच्छन्दतापूर्वक चलते रहने देने से उपस्थित हो सकता है। ····पूर्ण विचार के बाद, सपरिषद उपराज्यपाल इस बात से सन्तुष्ट हैं कि चालान से होने वाली हानियां उसके लाभों से अधिक होंगी ····इसमें कोई सन्देह नहीं कि चालान से रुतबा बढ़ जाएगा और वे अपने को शहीद कहने लगेंगे। उन पर मुकदमा चलाना, जबकि सरकार के सलाहकारों को उसकी सफलता में भारी सन्देह है, अत्यन्त अनिष्टकर होगा।"

महात्मा गांधी शीघ्र ही बिहार आने वाले थे। सरकार ने उनकी यात्रा का प्रभाव जानने के लिए तब तक इन्तजार करने का निश्चय किया। यह आशा थी कि उनकी यात्रा स्थानीय नेताओं पर संयमात्मक प्रभाव डालेगी। "परन्तु, यदि प्रान्त से उनके चले जाने के बाद, असहयोग आन्दोलन उसी ढंग से चलता है, जिस ढंग से नवम्बर के मध्य तक चल रहा था, तो स्पष्ट रूप से कुछ न कुछ कार्रवाई अवश्य करनी पड़ेगी। स्वभावतः पहला कदम यह होगा कि भारत सरकार को सलाह दी जाय कि वह राजद्रोहात्मक सभा अधिनियम को प्रान्त के कुछ जिलों पर लागू कर दे।

दिसम्बर के आरम्भ में, महात्मा गांधी ने शौकत अली के साथ प्रान्त का तूफानी दौरा किया। मजहरुल हक भी कई स्थानों पर उनके साथ गये तथा सभाओं में भी शामिल हुए। ऐसे सभी अवसरों पर उन्होंने ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीयों पर किये गये अत्याचारों तथा अरब धार्मिक स्थानों के अतिक्रमण की बात दुहरायी। गांधीजी की उपस्थिति के कारण, इन सभी सभाओं में भीड़ अधिक रही। जिला अधिकारियों की रिपोर्टों के अनुसार बिहार में गांधीजी के दौरे का असहयोग आन्दोलन की प्रगति पर अमिट प्रभाव पड़ा। "विशेषरूप से पटना डिवीजन में, खिलाफत के प्रश्न पर मुसलमानों की भावना असंदिग्ध रूप से प्रबल हो गयी। वे मुसलमान भी, जो वर्तमान संविधान के प्रति निष्ठावान थे, यह महसूस करने लगे कि ब्रिटिश सरकार ने उन्हें जो वचन दिया था उसका पालन नहीं किया।"

नागपुर अधिवेशन के बाद, असहयोग आन्दोलन और भी तेज हो गया। कुछ प्रमुख नेता, जो असहयोग में विश्वास नहीं रखते थे, अलग हो गये। परन्तु अन्यों ने इस कार्यक्रम को और भी अधिक उत्साह से आगे बढ़ाया। बिहार में भी हसन इमाम, सच्चिदानन्द सिन्हा तथा अन्य इससे हट गये। नागपुर कांग्रेस के असहयोग प्रस्ताव के अनुसार, बिहार प्रान्तीय कांग्रेस समिति ने "प्रान्त भर में असहयोग सम्बन्धी गतिविधियों के गठन, निर्देशन एवं नियन्त्रण के लिए" एक संगठन समिति बनायी। इस समिति के 9 सदस्यों में से एक मजहरुल हक थे, अन्य थे– दीप नारायण सिंह, ब्रजकिशोर प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद, धरणीधर, कृष्ण प्रकाश सेन सिन्हा, मुहम्मद शफी, अब्दुल बारी और रामविनोद सिंह। समिति ने जिला संगठनों के मार्ग दर्शन के लिए नियम बनाये। आन्दोलन के अहिंसात्मक स्वरूप पर विशेष बल दिया गया। अभी तक सविनय अवज्ञा असहयोग कार्यक्रम का अंग नहीं बनी थी। कार्यकर्ताओं की गतिविधियां मुख्य रूप से गांवों में सभाओं और पंचायतों के गठन तथा शिक्षा, स्वास्थ्य एवं अन्य कार्यों तक ही सीमित रखी गयी थीं।

1921 में, बिहार में असहयोग आन्दोलन ने तेजी से प्रगति की। मजहरुल हक, राजेन्द्र प्रसाद तथा प्रान्त के अन्य नेताओं ने असहयोग के

कार्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए विस्तृत दौरे किये और विभिन्न भागों में अनेक सभायें की। शीघ्र ही, समस्त राज्यों में, भारी संख्या में पंचायतें बन गयी। छोटा नागपुर और सन्थाल परगना के जिले तथा प्रान्त के नान रेगुलेशन जिले भी अप्रभावित नहीं रहे। मार्च 1921 तक आन्दोलन की जड़ें गहरी जम गई और सरकारी अधिकारी स्थिति के 'अति गम्भीर' समझने लगे। सरकार ने आन्दोलन के ज्वार को रोकने के लिए अब तक जो उपाय किये थे, वे फेल हो चुके थे। तिरहुत डिवीजन तूफान का केन्द्र था। सरकार ने सभाओं पर रोक लगा दी थी, इसलिए इस डिवीजन में आन्दोलन मुख्य रूप से रैयत सभाओं द्वारा चलाया जा रहा था। अन्य भागों में भी, स्थानीय पंचायती अदालतों (असहयोगियों द्वारा स्थापित) ने काफी सफलता प्राप्त कर ली थी। छात्रो और अध्यापकों द्वारा सरकारी एवं सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षा संस्थाओं का सफल बहिष्कार अधिकारियों के लिए एक और सिर दर्द था। सरकार को यह भी सन्देह था कि असहयोगी पुलिस और सेवा की वफादारी को तोड़ने की कोशिश कर रहे हैं।

अतः स्थानीय (प्रान्तीय) सरकार ने आन्दोलन की प्रगति को रोकने के लिए जिला अधिकारियों को विस्तृत हिदायतें भेजीं। फरवरी 1921 के आरंभ में निग्रह आदेश पास कर के मजहरुल हक और राजेन्द्र प्रसाद को आरा में प्रवेश करने से रोक दिया गया। यद्यपि अनेक क्षेत्रों में और विधान-परिषद में इस कार्रवाई की घोर निन्दा की गयी, फिर भी सरकार के रुख में कोई परिवर्तन नहीं आया। ग्रामों में अतिरिक्त चौकीदार रखे गये और रैयत से अतिरिक्त भार उठाने को कहा गया। इसके अलावा, कुछ प्रभावशाली रईसों को विरोधी आन्दोलन शुरू करने के लिए मनाया गया। सरकार समर्थक मौलवियों को आन्दोलन के विरोध में फतवा जारी करने के लिये प्रोत्साहित किया गया। हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के कुछ ऐसे व्यक्ति भी थे, जिन्होंने सरकार को अपनी सेवा अर्पित की और लोगों को सरकार के पक्ष में लाने के लिए स्वयं ही पुस्तिकायें आदि निकाली।

लगभग इसी समय पंडित मदन मोहन मालवीय के सद्प्रयत्नों से गांधीजी और भारत के वाइसराय लार्ड रीडिंग के मध्य एक मीटिंग आयोजित की गयी। लार्ड रीडिंग ने गांधीजी का ध्यान अली भाईयों के वक्तव्यों की ओर आकर्षित किया और आशंका व्यक्त की कि इनसे हिंसा भड़क सकती है। इस पर गांधीजी ने अली भाईयों से एक वक्तव्य लिया, जिसमें उन्होंने ऐसे किसी इरादे से इन्कार किया। लार्ड रीडिंग स्पष्टीकरण से सन्तुष्ट हो गये और सहयोगियों का चालान करने का विचार छोड़ दिया। इसके विपरीत, अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने भी निश्चय किया कि "यदि असहयोगियों का चालान किया जाय या उन पर दीवानी मुकदमा चलाया जाय तो उन्हें चाहिए कि वे जनता के समक्ष अपनी निरपराधिता सिद्ध करने के लिए तथ्यों का पूरा विवरण न्यायालय के सामने प्रस्तुत करने के बाद आगे की कार्यवाही में भाग न लें। परन्तु जाब्ता फौजदारी के अधीन यदि उनसे कोई जमानत मांगी जाये, तो देने से इन्कार कर दें और इसके बदले जेल जाना स्वीकार कर लें।

इसी बीच, अंगोरा में तुर्की सरकार के विरुद्ध पुनः युद्ध छिड़ने की आशंका उत्पन्न हो गयी। कार्य समिति का मत था कि यदि युद्ध पुनः मुसलमानों की इच्छा के विरुद्ध शुरू होगा, अतः भारतीय सैनिकों का कर्तव्य है कि वे उसके सम्बन्ध में अपनी सेवा से इन्कार कर दें। 8 जुलाई, 1921 को कराची में अखिल भारतीय खिलाफत सम्मेलन हुआ। मुस्लिम मांगों को दुहराते हुए सम्मेलन ने एक प्रस्ताव पास कर यह घोषित किया कि "आज से किसी भी ईमानदार मुस्लिम के लिए सेना में नौकरी करना अथवा उनके लिए रंगरूटों की भर्ती में सहायता करना या सहमत होना गैर कानूनी होगा।" उसने यह भी धमकी दी कि यदि ब्रिटिश सरकार ने अंगोरा सरकार के साथ लड़ाई की तो सविनय अवज्ञा शुरू कर दिया जायगा। इसके परिणामस्वरूप, सरकार ने अली भाईयों और उसके साथियों को तंग करने का निश्चय कर लिया और सितम्बर में अली भाई गिरफ्तार कर लिये गये। जब उनकी गिरफ्तारी का कारण मालूम हुआ, तो गांधीजी ने स्वयं सार्वजनिक रूप से प्रस्ताव दुहराया और राष्ट्र से भी ऐसा ही करने को कहा। तिलक स्वराज्य फंड में बहुत धन इकट्ठा हो गया था, इसलिए कांग्रेस के लिए विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और

खद्दर आन्दोलन को तेज करने की योजना शुरू करना संभव हो गया। शराब-विरोधी प्रचार में भी काफी प्रगति हुई। शराब की दुकानों पर धरना दिया गया। कांग्रेस ने व्यापारियों से अपील की कि वे नशीली वस्तुओं का व्यापार बन्द कर दें। इसमें सरकार की ओर से हस्तक्षेप किया जाना स्वाभाविक था।

इन महीनों में मजहरुल हक की गतिविधियां पुनः सरकार के लिए भारी चिन्ता का विषय बन गयी। सरकार के निषेधकारी उपायों के बावजूद वे पूरे जोश के साथ जनता को संगठित करते रहे। 21 अप्रैल को उनके जन्मस्थान बाहपुरा में और 25 अप्रैल को राघोपुर में दिये गये अनेक प्रेरणाप्रद भाषणों को सरकार ने "अत्यन्त आपत्तिजनक और उत्तेजना फैलाने वाले" करार दिया। फिर भी उनके विरुद्ध कार्रवाई न की जा सकी।

जून 1921 में, असहयोग के सन्देश को जनता तक पहुंचाने के लिए मजहरुल हक ने उड़ीसा और छोटा नागपुर क्षेत्रों में विस्तृत दौरे किए। उनके चक्रधरपुर के दौरे की एक विस्तृत गुप्त रिपोर्ट हमें उपलब्ध हुई है। वे एक वकील खुरशेद हुसेन और गोपबन्धु दास के साथ 19 जून को प्रातः काल वहां पहुंचे थे। मजहरुल हक स्थानीय नेशनल स्कूल के छात्रावास में ठहरे थे। वहां पहुंचने के तुरन्त बाद, उन्होंने स्थानीय प्रभावशाली निवासियों की एक निजी बैठक आयोजित की और रहीम बख्श की अध्यक्षता में वहां एक खिलाफत कमेटी बनायी। सायं काल लगभग 7 बजे, स्थानीय म्युनिसिपल बाजार में एक सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें 4000 लोग शामिल हुए। स्थानीय नेशनल स्कूल के हैडमास्टर पंडित गोदावरी मिश्र ने श्रोताओं से मजहरुल हक का परिचय कराते हुए बताया कि वे महात्मा गांधी के सहपाठी, बिहार खिलाफत कमेटी के सेक्रेटरी और एक महान नेता हैं और तुरन्त ही भीड़ ने "महात्मा गांधी की जय, भारत माता की जय", के नारे लगाते हुए उनका अभिवादन किया।

मजहरुल हक ने ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों का वर्णन किया तथा हिन्दू मुस्लिम एकता, विदेशी माल के बहिष्कार और मादक द्रव्यों से परहेज के लिए जोरदार वकालत की।

लगभग इसी समय पंडित मदन मोहन मालवीय के सद्प्रयत्नों से गाधीजी और भारत के वाइसराय लार्ड रीडिंग के मध्य एक मीटिंग आयोजित की गयी। लार्ड रीडिंग ने गांधीजी का ध्यान अली भाईयों के वक्तव्यों की ओर आकर्षित किया और आशका व्यक्त की कि इनसे हिंसा भड़क सकती है। इस पर गाधीजी ने अली भाईयों से एक वक्तव्य लिया, जिसमे उन्होंने ऐसे किसी इरादे से इन्कार किया। लार्ड रीडिंग स्पष्टीकरण से सन्तुष्ट हो गये और सहयोगियों का चालान करने का विचार छोड़ दिया। इसके विपरीत, अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने भी निश्चय किया कि "यदि असहयोगियों का चालान किया जाय या उन पर दीवानी मुकदमा चलाया जाय तो उन्हें चाहिए कि वे जनता के समक्ष अपनी निरपराधिता सिद्ध करने के लिए तथ्यों का पूरा विवरण न्यायालय के सामने प्रस्तुत करने के बाद आगे की कार्यवाही मे भाग न लें। परन्तु जाब्ता फौजदारी के अधीन यदि उनसे कोई जमानत मांगी जाये, तो देने से इन्कार कर दें और इसके बदले जेल जाना स्वीकार कर लें।

इसी बीच, अगोरा मे तुर्की सरकार के विरुद्ध पुनः युद्ध छिड़ने की आशंका उत्पन्न हो गयी। कार्य समिति का मत था कि यदि युद्ध पुनः मुसलमानों की इच्छा के विरुद्ध शुरू होगा, अतः भारतीय सैनिकों का कर्तव्य है कि वे उसके सम्बन्ध में अपनी सेवा से इन्कार कर दें। 8 जुलाई, 1921 को कराची मे अखिल भारतीय खिलाफत सम्मेलन हुआ। मुस्लिम मांगों को दुहराते हुए सम्मेलन ने एक प्रस्ताव पास कर यह घोषित किया कि "आज से किसी भी ईमानदार मुस्लिम के लिए सेना मे नौकरी करना अथवा उनके लिए रंगरूटों की भर्ती में सहायता करना या सहमत होना गैर कानूनी होगा।" उसने यह भी धमकी दी कि यदि ब्रिटिश सरकार ने अंगोरा सरकार के साथ लड़ाई की तो सविनय अवज्ञा शुरू कर दिया जायगा। इसके परिणामस्वरूप, सरकार ने अली भाईयों और उसके साथियों को तंग करने का निश्चय कर लिया और सितम्बर में अली भाई गिरफ्तार कर लिये गये। जब उनकी गिरफ्तारी का कारण मालूम हुआ, तो गाधीजी ने स्वयं सार्वजनिक रूप से प्रस्ताव दुहराया और राष्ट्र से भी ऐसा ही करने को कहा। तिलक स्वराज्य फंड में बहुत धन इकठ्ठा हो गया था, इसलिए कांग्रेस के लिए विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और

खद्दर आन्दोलन को तेज करने की योजना शुरू करना संभव हो गया। शराब-विरोधी प्रचार में भी काफी प्रगति हुई। शराब की दुकानों पर धरना दिया गया। कांग्रेस ने व्यापारियों से अपील की कि वे नशीली वस्तुओं का व्यापार बन्द कर दें। इसमें सरकार की ओर से हस्तक्षेप किया जाना स्वाभाविक था।

इन महीनों में मजहरुल हक की गतिविधियां पुनः सरकार के लिए भारी चिन्ता का विषय बन गयी। सरकार के निषेधकारी उपायों के बावजूद वे पूरे जोश के साथ जनता को संगठित करते रहे। 21 अप्रैल को उनके जन्मस्थान बाहपुरा में और 25 अप्रैल को राघोपुर में दिये गये अनेक प्रेरणाप्रद भाषणों को सरकार ने "अत्यन्त आपत्तिजनक और उत्तेजना फैलाने वाले" करार दिया। फिर भी उनके विरुद्ध कार्रवाई न की जा सकी।

जून 1921 में, असहयोग के सन्देश को जनता तक पहुंचाने के लिए मजहरुल हक ने उड़ीसा और छोटा नागपुर क्षेत्रों में विस्तृत दौरे किए। उनके चक्रधरपुर के दौरे की एक विस्तृत गुप्त रिपोर्ट हमें उपलब्ध हुई है। वे एक वकील खुरशेद हुसेन और गोपबन्धु दास के साथ 19 जून को प्रातःकाल वहां पहुंचे थे। मजहरुल हक स्थानीय नेशनल स्कूल के छात्रावास में ठहरे थे। वहां पहुंचने के तुरन्त बाद, उन्होंने स्थानीय प्रभावशाली निवासियों की एक निजी बैठक आयोजित की और रहीम बख्श की अध्यक्षता में वहां एक खिलाफत कमेटी बनायी। सांय काल लगभग 7 बजे, स्थानीय म्युनिसिपल बाजार में एक सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें 4000 लोग शामिल हुए। स्थानीय नेशनल स्कूल के हैडमास्टर पंडित गोदावरी मिश्र ने श्रोताओं से मजहरुल हक का परिचय कराते हुए बताया कि वे महात्मा गांधी के सहपाठी, बिहार खिलाफत कमेटी के सेक्रेटरी और एक महान नेता हैं और तुरन्त ही भीड़ ने "महात्मा गांधी की जय, भारत माता की जय", के नारे लगाते हुए उनका अभिवादन किया।

मजहरुल हक ने ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों का वर्णन किया तथा हिन्दू मुस्लिम एकता, विदेशी माल के बहिष्कार और मादक द्रव्यों से परहेज के लिए जोरदार वकालत की।

कुछ दिन पूर्व, मजहरुल हक साबलपुर में एक जोशीला भाषण दे चुके थे, उन्होंने लोगों को सलाह दी थी कि वे सरकारी दमन से न डरें और जेल जाने के लिए तैयार रहें। उन्होने कहा था, "मेरे विचार से असली काम तब होता है जब हम जेल में होते हैं। जेल से बाहर जो समय खर्च होता है वह वास्तव में व्यर्थ ही खर्च होता है। जब हमारी मातृभूमि जंजीरों में बंधी और जकड़ी हुई है, तब हमें जेल से डरने की क्या आवश्यकता है। ऐसी परिस्थिति में तो फांसी का तख्ता हमारे लिए अधिक स्वागत योग्य होगा।" 6 अगस्त, 1921 को, मजहरुल हक ने सुपाल में एक असहयोग सम्मेलन में भाषण दिया, जिसमें देश की स्थिति अत्यन्त उत्तेजनापूर्ण होते हुए भी, उन्होंने श्रोताओं को अहिंसक उपायों से काम लेने की आवश्यकता बतायी। उन्होंने कहा, "अब वह समय आ गया है, जब तलवार हाथ में लेना और जिहाद के लिए तैयार होना प्रत्येक मुसलमान का कर्तव्य हो गया है। परन्तु महात्मा गांधी का विचार है कि यदि मुसलमान ऐसा करेंगे तो वे अपना ही विनाश कर लेंगे, क्योंकि उनके पास हथियार नहीं हैं। और हर कोई जानता है कि इस्लाम आत्मविनाश की अनुमति नहीं देता, यही कारण है कि कोई तलवार नहीं उठा सकता।" उन्होंने कहा कि स्वराज्य की चाभी खद्दर में है। जब आपके पास यह चाभी होगी, तभी आप स्वराज्य का दरवाजा खोल सकेंगे।

मजहरुल हक के इन उत्तेजक भाषणों ने स्थानीय अधिकारियों को पुनः उनके चालान की सलाह देने के लिए प्रेरित किया, परन्तु उच्च अधिकारियों के मत में मजहरुल हक के भाषणों में ऐसी कोई नयी चीज नहीं थी, जिससे उन्हें गिरफ्तार किया जा सके।

मजहरुल हक की लेखनी में बहुत ताकत थी। साप्ताहिक 'दी मदर लैंड' में, जो उन्होंने सितम्बर 1921 में स्थापित किया था, उनकी सम्पादकीय टिप्पणियों ने स्थानीय सरकार के क्षेत्रों में हलचल मचा दी। 19 जनवरी, 1922 को, खिलाफत के प्रश्न पर अपने सम्पादकीय लेख में मजहरुल हक ने कहा; जजीरातुल अरब, जिसमें पेलेस्टाईन, हेडजाज, अरब और मेसोपोटामिया हैं, मुसलमानों की गम्भीरतम धार्मिक भावनाओं

का स्पर्श करता है, और धमकी दो कि संसार में तब तक शान्ति न होगी और उन्हें तब तक चैन न मिलेगा, इसमें जो हस्तक्षेप करते हैं, जब तक 'वरहक खलीफा' इन देशों से अलग रहेगा। इंग्लैंड को मेसोपोटामिया और पेलेस्टाईन खाली कर देने चाहिए और मक्का के शरीफ को अपने विधिसम्मत शासक के विरुद्ध भड़काने से बाज आना चाहिए, अन्यथा, वर्तमान आन्दोलन बढ़ जायेगा और उस पर काबू पाना अत्यन्त कठिन हो जायेगा। सरकार को यह सोच कर भ्रम में न रहना चाहिए कि समस्या अपने समय पर अपने आप सुलझ जायेगी। यह नहीं सुलझेगी इस्लामी जगत का विरोध तो और बढ़ेगा, "और केवल खुदा ही जानता है कि वह कैसे खत्म होगा।"

देश में जनता की उत्तेजित भावनाओं को देखते हुए ऐसी टिप्पणियां अनुचित और खतरनाक समझी गयी। 1 नवम्बर, 1921 को अली भाइयों को दो वर्ष के कठोर कारावास की सजा दी गयी। 4 और 5 नवम्बर को अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक दिल्ली में हुई, जिसने प्रत्येक प्रान्त को यह अधिकार दिया कि वह, अपनी जिम्मेदारी पर, सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करे, जिसमें कर न देना भी शामिल हो। महात्मा गांधी बारडोली (गुजरात) में आन्दोलन का सूत्रपात करना चाहते थे। 17 नवम्बर को जिस दिन प्रिंस आफ वेल्स जहाज से बम्बई में उतरे, सारे देश में, पटना में भी, हड़ताल रखी गयी। परन्तु बम्बई में जिन लोगों ने प्रिंस (राजकुमार) के स्वागत समारोह में भाग लिया, उनके साथ भीड़ ने कुछ ज्यादतियां की। उस घटना से दुखी होकर महात्मा गांधी ने 19 नवम्बर को उपवास शुरू कर दिया और उसे 22 नवम्बर को तब तोड़ा जब शान्ति स्थापित हो गयी। बारडोली अभियान स्थगित कर दिया गया है।

अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने, जिसकी बैठक 23 नवम्बर को बम्बई में हुई, देश भर में राष्ट्रीय स्वयं सेवक दल बनाने का निश्चय किया। इस निश्चय के अनुसार समस्त प्रान्त के कांग्रेस कार्यकर्ताओं में से बिहार का भी सेवक दल बनाया गया। इस संगठन का सबसे पहला कर्तव्य प्रान्त में शान्ति कायम रखना था। सदस्यों को अहिंसा

की प्रतिक्षा करनी पड़ती थी और अपने कर्तव्यों के पालन में होने वाले समस्त कष्टों को झेलने के लिए तैयार रहना पड़ता था। एक केन्द्रीय नियन्त्रण मण्डल बनाया गया, जिसका मुख्यालय मुजफ्फरपुर में रखा गया। इसके 5 निर्वाचित सदस्यों में एक मजहरुल हक थे। परन्तु 19 दिसम्बर, 1921 को, बिहार व उड़ीसा की सरकार ने कांग्रेस स्वयं सेवकों, खिलाफत स्वयं सेवकों और असहयोग स्वयं सेवकों को, 1908 के भारतीय आपराधिक (दण्ड) विधि संशोधन अधिनियम की धारा 16 के अधीन गैरकानूनी संगठन घोषित कर दिया। शीघ्र ही, देशभर में, देशबन्धु दास, लाला लाजपत राय, पंडित मोती लाल नेहरू जैसे प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारियां शुरू हो गयीं। इस से पहले, 10 दिसम्बर को, अनेक केन्द्रों में कांग्रेस और स्वयं सेवकों के कार्यालयों की तलाशी की गयी तथा असहयोग आन्दोलन सम्बन्धी अभिलेख जब्त कर दिये गये और अन्धाधुन्ध नष्ट कर दिये गये। बिहार के भी बहुत से नेता गिरफ्तार कर लिये गये। सविनय अवज्ञा का समर्थन करने के कारण 'दी मदर लैंड' से और अधिक जमानत मांगी गयी। पत्र ने जमानत देने से इन्कार कर दिया और वह अस्थायी रूप से बन्द हो गया। 22 और 23 दिसम्बर को, जब प्रिन्स आफ वेल्स पटना आये, तो पटना में पूर्ण हड़ताल रही। शहर मे प्रत्येक दुकान बन्द कर दी गयी, सभी मुख्य सड़कें लगभग खाली रही, किराये भाड़े का कोई वाहन नहीं चला और जिस मार्ग से जुलूस निकला उस पर कोई भीड़ इकट्ठी नहीं हुई।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 36वें अधिवेशन ने, जो 27 और 28 दिसम्बर को अहमदाबाद में हुआ "कांग्रेस के अहिंसक असहयोग के कार्य-क्रम को पहले से भी अधिक तेजी से इस प्रकार और तब तक जारी रखने के दृढ़ निश्चय को पुन: दोहराया, जैसा प्रत्येक प्रान्त निश्चित करे और जब तक पंजाब और खिलाफत सम्बन्धी अत्याचारों की क्षतिपूर्ति न हो तथा स्वराज्य स्थापित न हो और जब तक भारत के शासन का नियन्त्रण गैरजिम्मेदार निगम के हाथों से निकल कर जनता के हाथों मे न आ जाय।" सरकार के दमनात्मक उपायों में कोई कमी नहीं आयी। इसी बीच, 5 फरवरी 1922 को चोरी-चोरा काड हो गया, जिसमे कुछ भीड़ ने थाने को आग लगा दी, जिससे 22 पुलिस कान्स्टेबलों की मृत्यु हो ग

अगले महीने महात्मा गांधी को गिरफ्तार कर लिया गया और बिहार में विभिन्न स्थानों पर विरोध सभायें और हड़तालें हुईं। अप्रैल में एक राष्ट्रीय सप्ताह मनाया गया और आन्दोलन जारी रखने के लिए स्थानीय नेताओं ने राज्य के सुदूरवर्ती भागों में विस्तृत दौरे किये। इसी दरम्यान एक और घटना घटी, जिसने राष्ट्र का ध्यान पुनः मजहरुल हक पर केन्द्रित कर दिया और उन्हें देशभूषण फकीर मजहरुल हक की लोकप्रिय उपाधि दिलायी। यह घटना थी एक सम्पादकीय लेख लिखने के सम्बन्ध मे हक की गिरफ्तारी और उन पर मुकदमा चलाया जाना, इस लेख में उन्होंने जेलों में कुछ राजनीतिक बन्दियों पर किये गये अमानुषिक अत्याचारों की आलोचना की थी। इस विषय पर आगे एक अध्याय में विशेष प्रकाश डाला गया है।

इसीबीच खिलाफत के प्रश्न को भी पृष्ठभूमि में डाल दिया गया। मुस्तफा कमाल की अध्यक्षता में, अंगोरा सरकार की चमत्कारपूर्ण सैनिक सफलताओं के बाद, अक्तूबर 1922 में, मुदानिया में युद्धविराम सन्धि पर हस्ताक्षर हुए, जिसके बाद नवम्बर 1922 से जुलाई 1923 तक लासेन शान्ति सम्मेलन हुआ। तुर्की की साम्राज्य सरकार, जो अब वस्तुतः कब्जा करने वाली सेना के अंगूठे के नीचे थी, पूर्णतया अविश्वसनीय हो गयी और उसके सभी प्रभावी अधिकार अंगोरा सरकार के हाथों में चले गये। उसने 28 अक्तूबर, 1923 को तुर्की को गणराज्य घोषित कर दिया। इससे पहले, अन्तिम खलीफा-सुल्तान मुहम्मद षष्ठ छिप कर निकल गया था और एक ब्रिटिश युद्धपोत द्वारा माल्टा पहुंचा दिया गया था। उसे सुल्तान के रूप में ही नहीं, खलीफा के रूप में भी, अधिकारच्युत कर दिया गया, तथा उसके भतीजे अब्दुल मजीद को नया खलीफा चुन लिया गया। परन्तु उसका कार्यकाल बहुत छोटा रहा, क्योंकि नेशनल असेम्बली ने गर्मागर्म बहस के बाद 3 मार्च, 1924 को चिर-प्रतिष्ठित खलीफा का पद समाप्त कर दिया। इस प्रकार खिलाफत के समर्थकों के पैरों के नीचे से जमीन खिसक गयी।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि मजहरुल हक खिलाफत की व्यवस्था में इन दूरगामी परिवर्तनों की संभावना पहले ही समझ गये थे और खलीफा-

सुल्तान की दो विशिष्ट हैसियतों की ओर ध्यान आकर्षित कर चुके थे। मदानिया की युद्ध विराम सन्धि के बाद और 'खलीफा' तथा 'सुल्तान का पद' सुल्तान की उपाधि की विधिवत समाप्ति से बहुत पहले तुर्की में इन उपाधियों में परिवर्तन के लिये विभिन्न प्रस्तावों पर विचार होता रहा था। एक प्रस्ताव यह था कि 'खलीफा' और 'सुल्तान का पद' निर्वाचित पद बना दिये जायें, भले ही फिलहाल वे आटोमन परिवार तक सीमित रहे। समाचार भारत में भी आया था और हक ने 10 नवम्बर, 1922 के 'दी मदरलैण्ड' मे एक लम्बे सम्पादकीय में उस पर टिप्पणी की थी।[1] उन्होने कहा कि इस समाचार की प्रमाणिकता की जाच करने का कोई तरीका नही है और यह सभव है कि "आगामी लासेन सम्मेलन में ससार के मुसलमानों की भावनाओं को तुर्की राष्ट्र के विमुख करने के लिए अफवाहें फैलायी जा रही हो।" परन्तु उनका व्यक्तिगत विचार था कि "तथ्य सही है पर उनसे अनावश्यक रूप से विचलित होने का कोई कारण नही है।" खलीफा का पद सदा ही, कम से कम सिद्धांतः चुनाव पर आधारित रहा है और यह अच्छा ही है कि सिद्धात को पुनः स्थापित किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त, मुस्लिम समुदाय कुछ परिस्थितियो में खलीफा को पदच्युत भी कर सकता है। 'सुल्तान' और 'खलीफा' के दोनो पद अलग-अलग हैं और यदि तुर्क यह आवश्यक समझते हैं कि सुल्तान को पदच्युत कर देना चाहिए तो यह उनका अन्दरूनी मामला है और भारतीय मुसलमान जो "अपने देश में अत्यन्त अधीनस्थ स्थिति में हैं" "तुर्क जैसे स्वाधीन लोगों की घरेलू समस्याओं में हस्तक्षेप" नही कर सकते। परन्तु जहा तक खिलाफत का प्रश्न है, सारा मुस्लिम जगत उसमें "अपरिमित दिलचस्पी" रखता है। हक यह उचित समझते थे कि "खलीफा के चुनाव के समय तुर्क ससार के मुसलमानो के विशेष रूप से भारत के मुसलमानो के जिनकी सख्या 7 करोड है, मत की उपेक्षा न करें।" हक का यह भी विचार था कि "भावी खलीफा इस्लाम के सामन्ती राज्यों का, जिनमें ससार के सभी स्वतत्र मुस्लिम राज्य हों, धर्माध्यक्ष हो और कुछ संकटो के समय वह सभी इस्लामी राजाओं को अपनी सहायता के लिये बुला

1. इस समय पत्र के सम्पादक बे० बी० साहब थे, परन्तु प्राय: हक अपने एम० एच० के नाम से भी सम्पादकीय स्तम्भ लिखा करते थे।

सके।" इस प्रस्ताव के सम्बध में, कि खलीफा आटोमन परिवार के सदस्यों में से ही चुना जाना चाहिए, रायटर से उद्धरण देते हुए हक ने कहा कि मालूम होता है "तुर्क राष्ट्र किसी ऐसी योजना पर विचार कर रहा है, जो इस्लाम की शरियत के अनुकूल होगी और जो खिलाफत के गौरव और प्रतिष्ठा को बढ़ायेगी।" परन्तु यह आशा आशा ही रह गयी है और वास्तविक घटनाक्रम इस प्रकार चला कि तुर्की नेशनल असेम्बली ने खलीफा के पद को पूर्णतया समाप्त करने का निश्चय कर लिया।

मजहरुल के अन्य दोस्त भी उनकी सहायता के लिये आगे बढ़े और उन्होंने उन्हें गुप्त रूप से धन और सामान भेजा। एक ने उन्हें पुराना 10 अश्व शक्ति का स्टीम इंजन भेंट किया। मजहरुल हक ने इस नये स्थान का नाम सदाकत आश्रम[1] (सत्य निवास) रखा, जो अन्य बातों के अलावा हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रति उनके महान आदर का द्योतक था।

आरम्भ में, छात्र वहां कताई और बुनाई के लिए भारी संख्या में चरखा तथा अन्य सहायक उपकरण बनाया करते थे। लड़कों के नैतिक विकास और व्यावसायिक प्रशिक्षण पर विशेष बल दिया जाता था।

इसी बीच, महात्मा गांधी ने, देश भर में राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय महाविद्यालय और सभी प्रकार के राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित करने के लिए आन्दोलन शुरू कर दिया। उनकी योजना में बिहार में भी एक विद्यापीठ (राष्ट्रीय विश्वविद्यालय) की स्थापना का प्रावधान था। वर्तमान पटना-गया मार्ग पर एक राष्ट्रीय महाविद्यालय एक किराये के मकान में पहले ही स्थापित हो चुका था, परन्तु गांधीजी चाहते थे कि बिहार में शीघ्र ही एक विद्यापीठ की स्थापना हो जाय। संगठनकर्ताओं को विद्यापीठ के लिए पटना के समीप एक उपयुक्त स्थान ढूंढने में कठिनाई हो रही थी।

जब मजहरुल हक को इस बात का पता चला, तो उन्होंने तुरन्त राजेन्द्र प्रसाद को बुलवाया और अपने ही धन से विद्यापीठ के लिये भवन निर्मित करा दिया। असहयोग के प्रश्न पर सभी वरिष्ठ नेता अलग हो गये थे। इसलिये स्थायी संगठनकर्ता विद्यापीठ को चलाने के लिये धन की अनिश्चितता के कारण फिर भी कुछ-कुछ चिन्तित थे। परन्तु महात्मा गांधी ने एक समुचित राशि, जो उन्होंने झरिया में एकत्र की थी, उन्हें सौंप कर उनका उत्साह बढ़ाया। वे स्वयं 6 फरवरी को प्रातःकाल पटना पहुंचे और उसी दिन बिहार विद्यापीठ का औपचारिक उद्घाटन किया। विद्यापीठ का कार्य "उन सभी राष्ट्रीय संस्थाओं के जो प्रान्त में जन्म लेती चली जा रही थीं क्रियाकलाप को समन्वित करना और उनका नियंत्रण और मार्गदर्शन करना था।"

---

1. 'सदाकत' फारसी का शब्द है और 'आश्रम' संस्कृत का।

मजहरुल हक विद्यापीठ के कुलपति और व्रजकिशोर प्रसाद उपकुलपति बने। जो छात्र सरकारी कालेजों की परीक्षायें नही देना चाहते थे, उनकी परीक्षा का प्रवन्ध किया गया। 1921 में राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के तत्वावधान में प्रान्त में 10 केन्द्रो में परीक्षा ली गयी। मेट्रिक्युलेशन परीक्षा सभी 10 केन्द्रों में हुई, परन्तु आई०ए०, आई०एस०सी०, बी०ए०, बी०एस०सी० परीक्षायें केवल पटना, भागलपुर, मुजफ्फरपुर और मुगेर में हुई। मेट्रिक्युलेशन परीक्षा में कुल 387, आई०ए और आई०एस०सी० में 75, बी०ए० में 33 और बी०एस०सी० में 10 छात्र बैठे। उनकी परीक्षा उन्ही विषयो में ली गयी, जिन्हें सरकारी यूनिवर्सिटी परीक्षाओ के लिये वे तैयार कर रहे थे।

एक राष्ट्रीय महाविद्यालय भी स्थापित किया गया और राजेन्द्र प्रसाद को उसका प्रिंसिपल बनाया गया। महाविद्यालय के अन्य अध्यापक थे आचार्य बद्रीनाथ वर्मा, जगन्नाथ प्रसाद प्रेम सुन्दर बोस, जगत नारायण लाल, रामचरित्र सिंह और अब्दुल बारी। शीघ्र ही विश्वविद्यालय के कुछ सबसे अच्छे लडके सरकारी कालेज छोडकर चले आये और राष्ट्रीय महाविद्यालय में भर्ती हो गये। इन छात्रों के विषय में लिखते हुए राजेन्द्र प्रसाद ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये: "हमारे पास काम करने और जीने का एक उच्च आदर्श था। इसके सिवाय ऐसी और कोई चीज उन्हें देने को न थी, जिसकी तुलना उससे की जा सके जिसे वे पीछे छोड आये थे। उनमें से कुछ तो हमसे जुड गये और अब भी राष्ट्र की सेवा कर रहे है। परन्तु अन्य एक वर्ष या इससे कुछ अधिक समय तक काम करके फिर वापस चले गये और उनमे कुछ इस समय सरकारी सेवाओ में जिम्मेदारी के पदो पर विराजमान हैं।" राष्ट्रीय महाविद्यालय पर राष्ट्रीय शिक्षामंडल का स्वामित्व था, जो उसकी सामान्य नीति को निर्धारित करता था। प्रशासन की बातें, महाविद्यालय परिषद को सौंप दी गयी थी जिसमें वद्यापीठ के कुलपति, उपकुलपति और रजिस्ट्रार, राष्ट्रीय महाविद्यालय के प्रिंसिपल और अध्यापक वर्ग के पाच सदस्य तथा राष्ट्रीय शिक्षा मंडल द्वारा निर्वाचित 6 व्यक्ति थे।

सदाकत आश्रम तभी से बिहार में कांग्रेस की गतिविधियो का मुख्य केन्द्र रहा है।

हिन्दू-मुस्लिम एकता के महान दूत

स्व० सिस्टर निवेदिता ने अपने एक निबन्ध में लिखा है "बिहार सदा ही भारत का ऐसा प्रान्त रहा है और आज भी [illegible] के सभी देशों के लोग बसे। निःसन्देह अपनी सीमाओं के अन्दर [illegible] प्रकार के तत्वों की इसी निकटता के कारण बिहार [illegible] राजनीतिक प्रतिभाओं की जन्मभूमि बना है। एक ही [illegible] महान उसके पौत्र अशोक समस्त गुप्तवंश, शेर शाह और अन्त में गुरु गोविन्द सिंह का पैदा होना उस प्रान्त के लिए भारतीय इतिहास की [illegible] हस्तियों के सामान्य हिस्सों से अधिक है।... [illegible] रहा है। कोई दूसरों का अन्धानुयायी या [illegible] नहीं रहा है। हर एक ने सामयिक परिस्थितियों का [illegible] किया है और उन्हें समझा है तथा यह जानकर कि उन्हें [illegible] प्रकार [illegible] किया जा सकता है, उन्हें, सही दिशा में [illegible] की है।" बिहार में, आमतौर से हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच [illegible] सहयोग काफी समय तक सार्वजनिक [illegible] रहा। हमने अलीगढ़ आन्दोलन का [illegible] किया है [illegible] भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई और [illegible] बिहारी मुस्लिम नेताओं के [illegible] तक बिहार ने, मुस्लिम और [illegible] के [illegible] आकांक्षाओं से प्रेरित होकर [illegible] कर काम करने का [illegible]

पर दुर्भाग्य से एक विवाद खड़ा हो गया। उन्होने आरम्भ से अन्त तक पृथक निर्वाचन की माग का डट कर विरोध किया। इसके फलस्वरूप, भारत के अनेक मुस्लिम समाचारपत्रो ने उन पर तीखे प्रहार किये। डा० सच्चिदानन्द सिन्हा ने कहा : "उन पर घृणा, उपहास और गालियो की वर्षा की गयी, परन्तु इनका उनके साहस और देशभक्ति पर तनिक भी प्रभाव न पड़ा। वे परिणामों की परवाह किये बिना लड़े और दृढ़ता से लड़ते रहे। वे हिन्दू मुस्लिम एकता के सबसे बड़े दूतो में से एक थे। वे सदा उसका उपदेश देते थे और उसे सार्वजनिक रूप से तथा निजी तौर से भी व्यवहार मे लाते थे। इस सम्बन्ध मे कड़ी परीक्षा में भी वे खरे उतरे।"[1] 1910 मे इलाहाबाद में, कांग्रेस-अधिवेशन में जब मुहम्मद अली जिन्ना ने विधान मंडल में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की निन्दा करने के लिए एक प्रस्ताव पेश किया तो मौलाना मजहरुल हक ने बड़ी जोरदार भाषा मे उसका समर्थन किया। उन्होंने मार्ले-मिन्टो सुधारो के क्रियान्वयन को दोनों बड़े सम्प्रदायों के समान हित के लिए घातक बताया और उन्हे सलाह दी कि "वे अलग अलग न रह कर मिल-जुल कर काम करें।"

अगले वर्ष हक को साम्राज्यीय विधान परिषद (इपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल) मे पृथक निर्वाचन पर बोलने का अवसर मिला। पंडित मदन मोहन मालवीय ने इस आशय का एक प्रस्ताव परिषद मे प्रस्तुत किया था कि परिषद में मुसलमानो का प्रतिनिधित्व उनकी सम्पूर्ण जनसंख्या और सरकार को दिये गये उनके अशदान के अनुपात मे होना चाहिए। उन्होंने शिकायत की थी कि पृथक निर्वाचन और मिश्रित निर्वाचन विधि के जरिये मुसलमानों ने इतना अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त कर लिया है कि उसका औचित्य किसी प्रकार सिद्ध नही किया जा सकता। मजहरुल हक ने उस भावना की आलोचना की जिस भावना से प्रस्ताव पेश किया गया था। उन्होने कहा "श्रीमन्, विशेष निर्वाचन विधि के सम्बन्ध में मेरे विचार सारे भारत को मालूम हैं। मैंने उन्हें कभी नही छिपाया। मुझे विशेष निर्वाचन के सिद्धान्त से कोई मोह नही है। मुझे विश्वास

1 सिन्हा पूर्वोक्त पुस्तक, पृष्ठ 79

नहीं कि यह सिद्धान्त ठोस है। विशेष निर्वाचन मंडलों से कोई लाभ तो है नहीं पर इतना आवश्य है कि संयुक्त भारत के सपने कुछ हद तक पिछड़ जायेंगे। परन्तु हम को देश की परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए। मुसलमान विशेष निर्वाचक मंडल की मांग क्यों करते हैं ? इस विशेष मांग का सही उत्तर माननीय श्री गोखले ने दिया है। कुछ अपवादों को छोड़ कर सभी मामलों में, विधान-परिषदों या जिला बोर्डों की म्युनिसिपेलिटियों के अधिकांश चुनावों में मुसलमान बिलकुल कहीं के नहीं रहते। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही प्रत्याशी के रूप में खड़े होते हैं, इसलिए नहीं कि उनके सिद्धान्तों या विचारों में कोई अन्तर होता है। वे सब मुख्य रूप से धर्म के आधार पर अपने निर्वाचकों का समर्थन चाहते हैं। हिन्दू को हिन्दू वोट देता है और मुसलमान मुसलमान को। नतीजा यह होता है कि संख्या में कम होने के कारण मुसलमान हार जाते हैं। यही मुख्य कारण था जिससे मुसलमान एक शिष्टमंडल को लेकर श्रीमान जी के पूर्वाधिकारी के पास गये और उन्होंने विशेष निर्वाचक मंडल की मांग की।

वास्तव में मिश्रित निर्वाचक मंडलों का सिद्धान्त ही अन्तिम सिद्धान्त है, जिस पर भारत और भारतीय संसद काम करेगी। केवल कुछ ही वर्ष पहले जब हिन्दू और मुसलमान दोनों मिश्रित निर्वाचक मंडल के सिद्धान्त पर लड़ रहे थे, तब मुझे अपने तत्कालीन नेता अली इमाम के साथ काम करने का सौभाग्य और गौरव प्राप्त हुआ था, और हम दोनों मिश्रित निर्वाचन के इस सिद्धान्त के लिए गालियों और अभिशापों की बौछारों के बीच लड़ते रहे थे क्योंकि मुझे विश्वास था कि वह समय आयेगा जब हिन्दू और मुसलमान मिलेंगे और साथ-साथ काम करेंगे। तब न तो धर्म भेद रहेगा और न देश में सम्प्रदायवाद रहेगा तथा इन विशेष निर्वाचक मंडलों के लिए कोई स्थान भी न रहेगा।......1890 के दशक के आरम्भ में मैं स्वयं संयुक्त प्रान्त में था और तब उनमें बड़ी दोस्ती थी यह मैं जान गया था परन्तु दुर्भाग्य से कुछ बात हो गयी है और अब दोनों एक दूसरे के बहिष्कार पर तुले हुए हैं।...मेरे अपने प्रान्त बिहार में, मुझे यह कहने में गर्व है कि हिन्दू और मुसलमान हाथ से हाथ मिला कर

काम करते हैं। हम एक-दूसरे के प्रति शत्रुता की भावना से कभी काम नही करते। यदि कोई मतभेद पैदा होता है तो नेता लोग बैठ कर चन्द मिनटों में उसे दूर कर देते हैं।

"इस परिषद में हमारा यह कर्तव्य है कि हम ऐसे प्रस्ताव न लायें जो दोनों सम्प्रदायों में से किसी की भावनाओं को ठेस पहुंचाते हों और उन्हें उत्तेजित करते हों। इन दिनों सच्चे देशभक्त का यह काम है।...

"श्रीमन् यदि मेरे मित्र इस प्रस्ताव को इस भावना से प्रस्तुत न करते जिस भावना से किया है तो मैं उनका समर्थन करता। परन्तु उन्होने जो भाषण दिया है उसके बाद मैं अन्तःकरण से उनके प्रस्ताव का समर्थन नही कर सकता। इन शब्दों के साथ मैं उनका विरोध करता हूं और पूरे जोर से विरोध करता हूं।"

दिसंबर 1912 मे पटना में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 27वें अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने बिहार में विद्यमान साम्प्रदायिक एकता का बड़े सन्तोष के साथ वर्णन किया। उन्होने कहा, "बिहार में हम अपने को ऐसे लोगों की अपूर्व स्थिति मे लाने का दावा करते हैं जो हिन्दू-मुसलमान के प्रश्न से प्रभावित नही हैं, इसका यह अर्थ नही है कि प्रत्येक व्यक्ति इस भेदभाव से मुक्त है। इस भौतिक संसार में ऐसे कल्पना प्रसूत आदर्श स्थिति असम्भव है। जब तक मानव स्वभाव मानव स्वभाव रहेगा, तब तक सदा ऐसे लोग रहेंगे, जो स्वार्थसिद्धि के लिए या अस्थायी लाभ के लिए अथवा किसी गलत धारणा से राष्ट्रीय हितों को भाड़ में झोंकने के लिए तैयार रहेंगे। परन्तु हमारा दावा यह है कि लोगों का हृदय अन्दर तक साफ है और यदि दुर्भाग्य से कोई मतभेद पैदा हो जाता है, जैसा कि कभी कभी होना स्वभाविक है तो वह दूर हो जाता है और दोनो बड़े सम्प्रदायों के सामान्य अच्छे सम्बन्धों पर कोई स्थायी प्रभाव नही डालता। दोनों एक ही आदर्श से प्रतिबद्ध हैं, दोनों एक ही मंच पर काम करते हैं और दोनों ही अपनी मातृभूमि की भलाई के लिए कोशिश करते हैं। जैसा कि मैंने इससे पहले भी अक्सर कहा है, इस प्रश्न के हल मे ही भारत की मुक्ति है।

यही उन प्रश्नों का एक प्रश्न है जिस पर प्रत्येक सच्चे देश भक्त भारतीय को विचार करने की कोशिश करनी चाहिए और उसे हल करना चाहिए....

"एक जाति, जिसकी जनसंख्या 7 करोड़ है और जिसमें कुछ बहुत अच्छे बुद्धिजीवी और उच्च कोटि के लोग हैं, एक ऐसी शक्ति है, जिसे आसानी से उपेक्षित नहीं किया जा सकता और न किया जाना ही चाहिए। मैंने एक आदर्श, एक लक्ष्य को लेकर संकल्प और उत्साह से भरे अपने भाग्य की अन्तिम सिद्धि के लिए शान्तिपूर्ण प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ते हुए, 31 करोड़ 50 लाख मानवों का चित्र अनेक बार अपने दिमाग में उतारा है। इतनी बड़ी शक्ति संसार में कहीं भी अप्रतिरोध्य होगी। परन्तु इसका उल्टा पहलू जिसमें 7 करोड़ लोग मुख्य समूह से कटकर उल्टी दिशा में चलने लगें इतना भयानक है कि उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।"

उन्होंने बाल्कन युद्धों में हिन्दुओं द्वारा मुस्लिम शरणार्थियों के उत्पीड़न के प्रति दिखायी गयी व्यापक सहानुभूति का भी उल्लेख किया। मजरहूल हक के लिए यह इस बात का स्पष्ट संकेत था कि संकट और खतरे के समय दोनों सम्प्रदाय एक हो सकते हैं। फिर भी उन्होंने हिन्दुओं से अपील की कि वे अपने दिमाग से इस विचार को निकाल दें कि मुस्लिम भारत की ओर न देख कर अरब की ओर अधिक देखते हैं और इसीलिए उनकी देशभक्ति पर विश्वास नहीं किया जा सकता। उन्होंने कहा "मैंने ऐसी आलोचनायें पढ़ी हैं कि भारत के मुसलमान भारत के बारे में न सोच कर तुर्की और अरब के बारे में अधिक सोचते हैं। यह बिल्कुल सच है। परन्तु इन आलोचकों ने कभी यह समझने की भी कोशिश की है कि ऐसा क्यों है? वास्तविकता यह है कि इस संसार में धर्म सदा ही मानव और राष्ट्र के व्यवहार का मुख्य निर्णायक कारक रहा है और अब भी है। और मुस्लिमों का धर्म भारत से बाहर है। इस्लाम का यह एक मुख्य सिद्धान्त है कि सभी मुस्लिम, चाहे वे किसी राष्ट्रीयता, प्रजाति या जीवन स्तर के हों, भाई-भाई हैं। उनके खुदा के घर में न कोई सुरक्षित स्थान है और न कोई विशिष्ट स्थान है और तुच्छ से तुच्छ मुस्लिम भी संसार के बड़े से बड़े अभिमानी सम्राट को महत्व न देगा। इसका पालन सिद्धान्त रूप में ही नहीं, प्रत्यक्ष व्यवहार में भी किया जा

है।" इसलिए भारत से बाहर की ओर देखने वाले मुसलमानों पर कोई आक्षेप नहीं होना चाहिए। जब तक कोई मुसलमान है, तब तक वह अपनी धार्मिक मुक्ति के लिए भारत से बाहर देखेगा और बिना देखे न रहेगा। मैं अपने हिन्दू भाइयो को यह बताना चाहता हूं कि वे अपनी दृष्टि व्यापक बनायें तथ्यो को तथ्यों के रूप में स्वीकार करें तथा स्थिति को उदारता और सहनशीलता के साथ काबू मे करें। वास्तव मे मेरा विश्वास है कि यदि वे स्थिति को पूर्ण रूप से और सहानुभूति के साथ समझें, तो वह भारतीय राष्ट्रीयता के हित के लिए कमजोरी के बजाय शक्ति का स्रोत बन जाएगी।"

अपने सहधर्मियो को मजहरुल हक ने सलाह दी कि "चूंकि आप मुसलमान हैं, इसलिए आप भारत से बाहर देखे बिना नहीं रह सकते, परन्तु आप अपनी मातृभूमि को न भूलें। भारत को अपने समस्त पुत्रो से बहुत आशायें हैं, और उसके हितो की उपेक्षा पाप के समान है।" अन्त मे उन्होंने कहा, "यह मेरे जीवन का कार्य है। मैं चाहता हूं कि दोनों सम्प्रदाय एक-दूसरे को समझें, एक-दूसरे की कमजोरियो को सहन करें, हाथ से हाथ मिलायें और साथ साथ काम करें। मेरी समझ में यह एक बड़े से बड़ा कार्य है, जिसकी पूर्ति मे एक भारतीय को अपना जीवन लगा देना चाहिए।"

1915 मे मौलानाम जहरुल हक अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के अध्यक्ष चुने गये। यह वास्तव मे उनकी भारी विजय थी। प्रारम्भ मे, यह संगठन उन मुस्लिमो के हाथ मे था, जो कांग्रेस के हित के विरुद्ध थे। मजहरुल हक जैसे, राष्ट्रवादी मुसलमानो के अथक प्रयत्नो से यह धीरे-धीरे कांग्रेस के आदर्शों की स्वीकृति की ओर खिचता रहा। उसमे एक नयी भावना जागृत हुई और मजहरुल हक ने अनुभव किया कि उनके जीवन का उद्देश्य पूरा हो गया। अपने अध्यक्षीय भाषण मे उन्होंने अभीष्ट महत्वकाक्षाओं की पूर्ति के लिए हिन्दुओ और मुसलमानों के मध्य घनिष्ट सहयोग की अपनी हार्दिक इच्छा को रेखांकित किया। भाषण के सम्बन्ध में अपनी सम्पादकीय टिप्पणी मे 'दी एक्सप्रेस' (5 जनवरी,

1916) ने लिखा : "जब कभी भारत के कल्याण के सम्बन्ध में और भारत के लिए न्याय के सम्बन्ध में कोई प्रश्न उठा है तब मि० हक केवल सबसे पहले ही भारतीय नही, बाद में भारतीय और अन्त तक भारतीय, भारतीय और केवल भारतीय रहे हैं। वे किसी समुदाय और व्यक्ति का पक्ष नही लेते, बल्कि उनकी तरफ होते हैं, जो किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय के, वह सम्प्रदाय चाहे अपना हो या दूसरा, अधिकारों और हितो की अवहेलना किये बिना, सम्पूर्ण भारत की उन्नति चाहते हैं। बाद मे मुस्लिम लीग की भूमिका के प्रति हक के रुख का पता 'दी मदरलैंड' (9 जनवरी, 1922) मे 'दी मुस्लिम लीग' शीर्षक से प्रकाशित एक सम्पादकीय लेख से चलता है। यह मुस्लिम लीग के एक पहले अधिवेशन के सम्बन्ध में था, जिसमें मुस्लिम लीग के एक पृथक राजनीतिक संस्था के रूप में जारी रखने की उपयोगिता या अनुपयोगिता के बारे मे कुछ विचार हुआ था। अध्यक्ष मौलाना हसरत मोहानी ने उसे जारी रखने का समर्थन किया था। परन्तु स्वागत समिति के अध्यक्ष अब्बास तैयबजी ने उसे हमारी राष्ट्रीय एकता और धार्मिक विश्वास के लिए, घातक बताया था। इस विचारविमर्श के सन्दर्भ मे, हक ने कहा, "मुस्लिम लीग को कांग्रेस मे मिला दिया जाय वह कांग्रेस के लिए एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। यह याद रखना चाहिए कि मुस्लिम लीग 14 वर्ष पहले बनी थी। उस समय मुस्लिमो ने सोचा था कि अन्य सम्प्रदायो से अपने राजनीतिक अधिकारो की रक्षा के लिए उनकी एक पृथक संस्था का होना आवश्यक है। आरम्भिक वर्षों मे लीग सरकार की सद्भावना की धूप सेंक रही थी। परन्तु जल्दी ही यह पता चल गया कि अलगाव नीति घातक है और मुस्लिम नेताओ के सदुपदेशो से कांग्रेस और लीग के मध्य स्वस्थ सौमनस्य सम्बन्धो की स्थापना हो गयी लखनऊ अधिवेशन में पूर्ण समझौता हो गया और मुस्लिम हितों की रक्षा का काम कांग्रेस द्वारा इतनी कर्तव्यनिष्ठा के साथ किया गया कि हाल के वर्षों मे लीग का काम केवल कांग्रेस को प्रबल समर्थन देना रह गया है। हमारे मत से, मुस्लिम लीग को बने रहना चाहिए, परन्तु उस प्रयोजन के लिए नही, जिसके लिए वह स्थापित की गयी थी, अर्थात्

मुसलमानों के राजनीतिक अधिकारों की रक्षा के लिए नही। यह काम तो पूरी तौर से कांग्रेस के लिए, जो संयुक्त भारत की सर्वोच्च राष्ट्रीय संस्था है, छोड़ देना चाहिए। परन्तु मुसलमानों के राजनीतिक हितों से अलग अर्द्ध-धार्मिक प्रश्न और हित हैं, जो या तो केवल मुसलमानों से सम्बन्धित हैं या अन्य सम्प्रदायों के साथ उनके सम्बन्धों से। इन प्रश्नों के ठीक-ठाक हल के लिए मुस्लिम लीग के अस्तित्व को बनाये रखना बहुत लाभदायक होगा।"

जैसा कि मजहरुल हक ने कहा है, दोनों सम्प्रदायों में एकता का विचार उनके दिमाग मे तब आया, जब उन्होंने हिन्दू दर्शन शास्त्र पढ़ा जो उनके विचार से सर्वोत्कृष्ट है। उन्होंने अपने सहधर्मियों को सलाह दी कि वे हिन्दू-दर्शन पढ़ें और हिन्दुओं को सलाह दी कि वे मुस्लिम-दर्शन तो न पढ़ें पर कम से कम इतिहास अवश्य पढ़ें, क्योंकि तभी उनको अपने ऐसे भाई होने का गर्व होगा। उन्होंने दोनों सम्प्रदायों के हितों की समानता की ओर इंगित करते हुए कहा, "अपने देश के मामलों में मैं एकमात्र अपनी मातृभूमि की प्रगति पर दृष्टि रखते हुए, सभी सम्प्रदायों के मध्य सद्भावना और घनिष्ठ सहयोग के पक्ष में हूं। यदि हम भारत को प्रभावित करने वाले विभिन्न प्रश्नों को काफी गहराई से देखें, तो पायेंगे कि ऐसा कोई प्रश्न नही है जो सबको समान रूप से प्रभावित न करता हो। क्या हम पर हमारे हिन्दू या पारसी भाइयों से कम कर लगाये जाते हैं? क्या हाल ही में जो दमन कानून बनाये गये हैं, वे सिखों या मराठों की अपेक्षा मुसलमानों को कम प्रभावित करते हैं? क्या मुसलमानों के अखबार हिन्दुओं के अखबारों से अधिक आजाद हैं? क्या न्याय प्रशासन भारत के विभिन्न सम्प्रदायों पर विभिन्न प्रभाव डालता है? क्या शस्त्र कानून के कठोर और द्वेषपूर्ण विधान केवल जुझारू जाति के लिए ही सुरक्षित हैं और क्या गैर-जुझारू उनसे मुक्त हैं? नहीं, सच्चाई यह है कि कानून, कराधान, न्याय-प्रशासन, शिक्षा आदि महत्वपूर्ण मामलों में हम सब एक ही नाव में हैं और साथ ही साथ डूबेंगे या तैरेंगे। हम अनावश्यक रूप से हिन्दुओं से डरते हैं और उनका अविश्वास करते हैं। हमें शासन का व्यर्थ ही भय रहा है और अपने ऊपर कभी विश्वास नही रहा और

हमने अपने को दूसरों पर निर्भर बना लिया है। यह सभी बदलना चाहिए। इस नीति ने हमें अपने देश के सार्वजनिक जीवन में अपने उचित भाग के उपभोग से वंचित कर दिया है जिससे हमारे सर्वोत्तम हितों की अपार क्षति हुई है। हमें स्वतंत्रता लेनी है और ताजा हवा में अपनी आंखें खोलनी हैं।"

मजहरुल हक को तब बहुत धक्का लगा, जब उन्हीं के प्रान्त बिहार में शाहाबाद में, 1917 के बकरीद के त्योहार पर, एक भारी साम्प्रदायिक दंगा हो गया। साम्प्रदायिक उन्माद ने शीघ्र ही सम्पूर्ण जिले को अपनी चपेट में ले लिया और वह निकटवर्ती गया जिले में भी फैल गया। चारों ओर से लूट और हत्या के समाचार आने लगे। कलकत्ता के कुछ समाचारपत्रों और स्थानीय समाचारपत्रों ने घटनाओं के अतिरंजित विवरण छापे और मनमाने ढंग से दोषारोपण किये। आरा के सब-डिवीजनल आफिसर खान बहादुर अहमद अली को, कथित पक्षपातपूर्ण रवैये के लिए विशेषरूप से दोषी ठहराया गया। मजहरुल हक देर तक चुपचाप खड़े देखते नहीं रह सकते थे। वे स्वयं प्रभावित गांवों में गये और उपद्रवों की जांच-पड़ताल की। इससे "मुस्लिम जनता को तुरन्त कुछ आराम और संतोष मिला।" शाहाबाद के उपद्रवों पर मजहरुल हक की रिपोर्ट कलकत्ता के 'सदाकत' (6 नवम्बर, 1917) में छपी और उसका संशोधित एक सरकारी रिपोर्ट में छपा, जो इस प्रकार था : "उन्होंने खान बहादुर अहमद अली को इस दोषारोपण से मुक्त कर दिया है कि उपद्रव उन्हीं ने शुरू कराया था। सभी जातियों के हिन्दुओं ने दंगे में और मुसलमानों को लूटने में भाग लिया था। दंगे की विशालता को देखते हुए, घायल मुसलमानों की संख्या बहुत कम थी। महिलाओं का शीलभंग, शिशुओं की हत्या, मस्जिदों को अपवित्र करने, कुरान को नष्ट करने और स्त्रियों के कुओं में कूदने की कहानियों का वास्तव में कोई आधार नहीं है। उन्होंने महाराजा डुमराव, सूरज पुरा के बीर साहब, गरहनी के बाबू लक्ष्मन सिंह और आरा के हिन्दू जमींदारों की सेवाओं की बहुत प्रशंसा की है, क्योंकि उन्होंने मुसलमानों के जान-माल की रक्षा की थी। मि० हक तक इस बात का विश्वास करने को तैयार नहीं है कि उपद्रव होम रूल वालों

द्वारा शुरू किये गये आन्दोलन का परिणाम था और न वे इस मत का समर्थन करते है कि जिला अधिकारियों ने भारत मन्त्री को यह दिखाने के लिए कि हिन्दू और मुसलमान एक नही हैं, इसे जानबूझकर शुरू किया था। इस उपद्रव का कोई राजनीतिक आधार नही है।"

बकरीद के दंगो से सम्बन्धित मुकदमों पर विचार करने के लिए स्थानीय सरकार ने चार न्यायाधिकरण स्थापित किए। उन्होंने 1918 के मध्य तक अपना काम लगभग पूरा कर लिया और शाहाबाद के जिलाधीश ने उच्चधिकारियों को राय दी कि शान्ति और व्यवस्था बहुत कुछ कायम हो गई है, इसलिए न्यायधिकरणो को समाप्त कर दिया जाए। 1 अगस्त, 1918 को, उसे सूचित किया गया कि आपकी यह सिफारिश स्वीकार कर ली गयी है कि बकरीद के दंगों के सम्बन्ध में दायर किए गए मुकदमों मे भगोड़ों की जांच के लिए शाहाबाद में नए न्यायाधिकरण स्थापित न किए जायें। ..इसलिए, भगोड़ो के विरुद्ध जारी किए गए वारंट वापस ले लिए जायें। परन्तु यह आम माफी सरगनो को नहीं दी गयी।

शाहाबाद के दंगो ने अविश्वास का वातावरण पैदा कर दिया और कुछ समय तक बिहार के अनेक जिलों में दोनों सम्प्रदायों के मध्य संघर्ष के मामले में सरकार के नोटिस में आते रहे। सावधानी रखने के बावजूद भी, कुछ मामलो में उपद्रव नही रोके जा सके। दोनों सम्प्रदायों के शिक्षित नेता ईमानदारी से यह महसूस करते थे कि सम्बन्धों में खिंचाव का जारी रहना देश के स्वस्थ राजनीतिक और सामाजिक विकास और सांविधानिक प्रगति के लिए बाधक हैं। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि खुले हुए घाव को भर दिया जाए। देश के खिलाफ आन्दोलन ने उन्हें आवश्यक अवसर प्रदान कर दिया। स्थानीय सरकार, स्वयं भी, दूसरे कारणों से ही सही, सामान्य स्थिति लाने के लिए उतनी ही उत्सुक थी। प्रान्त मे खिलाफत आन्दोलन पर उसे पूरा ध्यान देना था। और वह नही चाहती थी कि पुलिस पर और अधिक भार डाला जाए। शाहाबाद के दंगों ने फिलहाल अनेक जिलों में पुलिस के काम को अस्तव्यस्त कर दिया था। इसलिए स्थानीय सरकार ने आगे बढ़कर 5 जुलाई, 1920 को पटना में

नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन में, जिसकी अध्यक्षता मेसूरियर ने की, निम्नांकित नेताओं ने भाग लिया—सूरजपुरा के राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, खानबहादुर सैयद मुहम्मद नईम, खानबहादुर ख्वाजा मुहम्मद नूर, बाबू अदितप्रसाद सिंह, खानबहादुर सैयद फखरुद्दीन, मजहरुल हक, रेजाल हुसैन, अब्दुल अजीज, मौलवी मुहम्मद जलील, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, बाबू गोरखप्रसाद और बाबू हरिकृष्ण सिंह।

मजहरुल हक ने देशभर में सान्त्वना-समितियों की स्थापना की आवश्यकता पर भाषण दिया। उनका ख्याल था कि शिक्षित वर्ग का प्रभाव उतना नहीं है, जितना मुफस्सिल क्षेत्रों के मौलवियों और पंडितों का है। उनके अनुसार मौलवी गोवध के विरुद्ध थे, इसलिए वे सान्त्वना समितियों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते थे। सान्त्वना समितियों के काम के अलावा, राजनीतिज्ञों का भी यह काम होना चाहिए कि वे गांवों में जायें और जनता से अपील करें। वे गोवध को नितान्त धार्मिक आवश्यकता नहीं समझते थे, अतः उन्होंने स्पष्ट रूप से सलाह दी कि गोवध अन्तिम रूप से बन्द हो जाना चाहिए। सान्त्वना समितियों के सदस्यों का चयन गैर-सरकारी लोगों पर छोड़ देना चाहिए। यदि सान्त्वना समितियां वास्तव में प्रतिनिधिमूलक हुईं तो वे विवादों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगी और यदि वे समझौता कराने में विफल रहीं, तब भी अधिकारियों को जानकारी तो दे ही सकेंगी।

अन्य सदस्यों ने भी अत्यन्त स्पष्टता से अपने मत प्रकट किए। सम्मेलन द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकृत सिफारिश यह थी कि ऐसे सभी क्षेत्रों में, जहां उपद्रव हुए थे, स्थानीय समितियां स्थापित की जायें। सपरिषद उपराज्यपाल ने यह सिफारिश स्वीकार कर ली और तत्सम्बन्धी एक गश्ती पत्र, 27 जुलाई, 1920 को, डिवीजनल कमिश्नरों के पास भेजा। परन्तु सान्त्वना समितियों के काम के बारे में हमें अधिक जानकारी नहीं है। शीघ्र ही, खिलाफत और असहयोग आन्दोलनों के तुरन्त बाद कांग्रेस ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल, ग्राम सेवा दल आदि अनेक संस्थाएं स्थापित कर डालीं।

खिलाफत और असहयोग आन्दोलन के दौरान मजहरुल हक ने हिन्दू मुस्लिम एकता की आवश्यकता पर विशेष बल दिया। इस सम्बन्ध में उन्होंने जितनी सभाओं को सम्बोधित किया, लगभग सभी में उन्होंने इस महत्त्वपूर्ण विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला। नीचे हम 19 मार्च, 1921 को, झरिया में दिए गए उनके भाषण की खुफिया (सी० आई० डी०) रिपोर्ट से उद्धरण देते हैं :

पूर्ण विचार के बाद, उन्होंने (मजहरुल हक ने) सोचा कि गौकशी ही एक ऐसी चीज है, जो हिन्दुओं और मुसलमानों को अलग करती है। वे मौलवी खलीलदास[1] के इस विचार से सहमत न थे कि गौकशी कम से कम तब तक बन्द रखी जाए, जब तक खिलाफत का प्रश्न हल हो, उन्हें यह कहना चाहिए कि गौकशी सदा के लिए छोड़ देनी चाहिए। जिन हिन्दुओं के साथ वे 1000 वर्ष से रह रहे हैं, उनकी भावनाओं को, उस गाय की हत्या करके, जिसे वे 'देवता माता' मानते हैं, उन्हें ठेस नहीं पहुचानी चाहिए। पड़ौसी के दिल को दुखाना न्यायसंगत नहीं है। मुसलमानों का धर्म उन्हें गायों की हत्या करने की इजाजत नहीं देता। मेरा ख्याल है कि गाय खाओगे तो गाय हो जाओगे, अगर सुअर खाओगे तो सुअर हो जाओगे, जैसे अंग्रेज सुअर हो गया। ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो अपना प्रभाव नहीं डालती।

मुसलमानों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा है कि अब उन्हें अपने पड़ौसियों की भावनाओं को आघात पहुंचाने से बाज आना चाहिए और हिन्दुओं से कहा कि इस प्रश्न को उन्हें मुसलमानों पर छोड़ देना चाहिए। हिन्दू गोवध के कारण मनुष्यवध करते हैं। आरा के दंगों मे

1. अपनी 'आत्मकथा' में डा० राजेन्द्र प्रसाद ने खलीलदास का उल्लेख किया है। शुरू में उसका नाम मुहम्मद खलील था। वह सदाकत आश्रम के आरम्भिक निवासियों में से था। वह बुद्धिमान भी था और विद्वान भी। परन्तु एक दिन मजहरुल हक ने इस आधार पर उसे आश्रम से निकाल दिया, कि वह आश्रम के अनुशासन के विरुद्ध साम्प्रदायिक विचारों का प्रचार कर रहा था। कोई भी तर्क हक को अपने निर्णय से न हटा सका। बाद में खलील यू० पी० में और अन्य अनेक दंगों के लिए वास्तव में जिम्मेदार पाया गया।

बहुत से लोग मारे गए है । धर्म इसकी आज्ञा नही देता । वध की हुई गायो की सख्या कम हो गई है। परन्तु उन्होने हिन्दुओ से कहा कि गाय के सम्बन्ध मे आप अपने को अलग ही रखे, और मुलमानों से कहा कि यदि आपको अपनी प्रतिष्ठा और इज्जत का कुछ भी ध्यान है और यदि आप राष्ट्र के प्रति कृतघ्न नही है तो आपको गोवध बन्ध करके हिन्दुओ के प्रति अपने दायित्वों को स्वीकार करना चाहिये।

"यह एक हिन्दू (गांधी) की आवाज थी जो खिलाफत के पक्ष में बुलन्द की गई थी। उनके धर्म की खातिर गोवध बन्द कर दी जाए। ऐसे बहुत से अन्य पशु हैं जिनका वध किया जा सकता है। यदि गाय का प्रश्न हल हो गया तो पूर्ण एकता हो जायेगी।"

"हिन्दू-मुस्लिम एकता अत्यावश्यक है । इसके बिना स्वराज्य नही मिल सकता।"

जब तक खिलाफत और असहयोग आन्दोलन अपने उत्कर्ष पर रहे, तब तक हिन्दू-मुस्लिम एकता का भविष्य कुछ उज्ज्वल दीखता रहा । परन्तु दुर्भाग्य से यह एकता, जो पिछले दो वर्षों के इतिहास की प्रमुख विशेषता थी 1922 के मुहर्रम में भंग हो गई जब मुसलमान में साम्प्रदायिक भावना आकाश को छू गई । जिससे जन-धन की अपार हानि हुई । एकता की पुन:स्थापना के लिय किये गये सतत प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए। मजहरुल हक ने देश में साम्प्रदायिक स्थिति का वर्णन 'दी मदरलैंड' (22 सितम्बर, 1922 में) 'हिन्दु-मुस्लिम एकता' शीर्षक से इस प्रकार किया :

"हमें यह सोचकर दुख होता है कि कांग्रेस तथा समाचारपत्रों द्वारा बार-बार दी गयी चेतावनियों के बावजूद हिन्दु-मुस्लिम सम्बन्धों मे तनाव दिन-दिन बढता जा रहा है। हम तथ्यों का स्पष्ट वर्णन करते हैं क्योंकि हम अपने को धोखा नही देना चाहते। कुछ को छोडकर ऐसा कोई प्रान्त नही है, जहाँ दोनों सम्प्रदायों मे कलह नही हुई। बंगाल में मुसलमानो की ओर अपना झुकाव प्रदर्शित करने तथा यह आग्रह करने के लिये कि मुसलमान युवको की शिक्षा के लिये अधिक सुविधाये दी जायें,

मि. फजलूल हक का मजाक उड़ाया गया। तेलिनीपाडा का मुहर्रम दगा अब भी हमारे दमागों में ताजा है। बिहार में, जो हिन्दु-मुस्लिम विप्लव का युद्धक्षेत्र है यद्यपि जनता ने गम्भीरता और समझौते की भावना का परिचय दिया है, परन्तु बुद्धिवादी तिल का पहाड बनाने में नहीं चुके। परिषद में कुछ मुसलमान पार्षदों ने म्युनिसिपलिटी में अधिक कानूनी अधिकारो की मांग की, परन्तु जब फखरूदीन और नूरल हसन ने स्पष्ट रूप से दिखा दिया कि मुस्लिम हित का कभी हनन नही हुआ तो वे मान गये। पजाब मामला सबसे अधिक गडबड है। हिन्दु पार्षदों ने मुस्लिम मन्त्री की पक्षपातपूर्णता की शिकायत की और दोनों ने अपना मामला एक विदेशी-राज्यपाल के समक्ष रखा, जिसने डनियल की तरह घोषणा की कि दोनो तरफ बहुत कुछ कहा जा सकता है। मुल्तान के उपद्रवियों ने तो महाविप्लव खड़ा कर दिया। उन्होंने धार्मिक स्थान जला दिये, महिलाओं का शील भंग किया और जो भी शरारत वे कर सकते थे उन्होंने की। मद्रास की कहानी भी उतनी ही शर्मनाक है। यद्यपि भोपाल उपद्रव शान्त हो गया है, फिर भी, उसके पीछे बहुत कुछ हुआ। इन घटनाओं और तथ्यों का वर्णन करते समय हमारा शरीर थर्राता है और हमारा हृदय अवसन्न हो जाता है। स्थानीय समाचारपत्र भी दलगत पक्षपात से मुक्त नही रहे। जब फजलुल हक ने बगाल मुस्लिम हितों का समर्थन किया तो सबसे अधिक उदार समझे जाने वाले पत्रों ने भी सयम से काम नही लिया अपितु, उसके सिर पर ओलो की वर्षा कर दी। पजाब के दैनिकों ने भी अधिक उदारता नही दिखायी।

अगले वर्षों में देश में और भी अधिक साम्प्रदायिक झगड़े हुये। सबसे अधिक भयकर कोहाट में (1924) में हुआ। उसकी प्रतिक्रिया बिहार में भी हुई। बिहार प्रान्त में अनेक स्थानो पर हिन्दु-मुस्लिम झगड़े हुये; इनमें सबसे अधिक दिल दहलाने वाला भागलपुर में हुआ। महात्मा गांधी के 21 दिन के उपवास और एकता सम्मेलन के सदस्यों की प्रतिज्ञा से नि.सन्देह स्थिति में तत्काल सुधार हुआ। परन्तु शीघ्र ही देश पुन: निराशाजनक तनाव की स्थिति में पहुच गया। आर्य समाज के शुद्धि आन्दोलनके संगठनकर्ताओं और तद्विरोधी तबलिग आन्दोलन के मुस्लिम

संगठनकर्ताओं ने अपना-अपना प्रचार तेज कर दिया। दिल्ली, कलकत्ता, इलाहाबाद सभी भयानक साम्प्रदायिक उपद्रवों से प्रभावित हुये। 1 मई, 1925 को कलकत्ता की एक सभा को सम्बोधित करते हुये महात्मा गाँधी ने हिन्दु-मुस्लिम एकता पर अपने भाव इस प्रकार प्रकट किये: "मैंने अपनी अक्षमता स्वीकार कर ली है। मैंने यह स्वीकार कर लिया है कि मैं एक वैद्य की तरह रोग का इलाज न कर सका। मैं नही समझता कि हिन्दु और मुसलमान मेरी दवा स्वीकार करने को तैयार हैं। इसलिये आजकल मैं समस्या का केवल सरसरी तौर पर उल्लेख कर देता हूं और यह कह सन्तुष्ट हो जाता हूं कि यदि हम अपने देश की मुक्ति चाहते हैं तो हम हिन्दुओं और मुसलमानों को किसी न किसी दिन एक होना पड़ेगा। और यदि हमारे भाग्य में यही बदा है कि एक होने से पहले हमें एक दूसरे का खून बहाना है तो मैं कहता हूं यह काम जितना जल्दी हो उतना ही अच्छा। तब हमें घड़ियाल की तरह आँसू नही बहाने चाहियें। यदि आप किसी को सहानुभूति नही दे सकते तो किसी से सहानुभूति मांगिये भी नही।"

बिहार की ओर भी हिन्दु और मुस्लिम उपदेशकों का ध्यान गया। स्वामी श्रद्धानन्द तथा अन्य आर्य समाजियों ने सक्रियता के साथ बिहार का दौरा किया। दूसरी ओर, ख्वाजा हसन निजामी पटना गए और उन्होंने वहाँ के अग्रणी मुस्लिम नेताओं के साथ अपने सम्प्रदाय के गठन की आवश्यकता पर विचार-विमर्श किया। बिहार सरकार की 31 अगस्त, 1925 की पाक्षिक गुप्त रिपोर्ट में लिखा: "गया और शाहाबाद जिलों में हिन्दु मुस्लिम भावनाओं में अधिक कटुता आ गई है। गया और सासाराम में हिन्दुओं द्वारा मुहर्रम के जलुस के बहिष्कार के बाद कुछ स्थानों मुसलमानों का आम बहिष्कार शुरू हो गया है। नीची जातियों के हिन्दु नौकर मुसलमानों की नौकरी छोड़ रहे है और हिन्दू कृषि मजदूर उनके खेतों से काम करने से इन्कार कर रहे है। सासाराम में बहिष्कार पारस्परिक है और हिन्दुओं तथा मुसलमानों के सामाजिक सम्बन्ध पूरी तरह टूट चुके है। ऐसा विश्वाश किया जाता है कि दोनों ओर के प्रभावशाली आदमी टकराव रोकने के लिये वस्तुतः उत्सुक नहीं हैं, परन्तु उन्हें डर है कि कहीं उनकी पार्टी उन्हें समझौतावादी न समझे।,

व्यापक साम्प्रदायिक तनाव से अत्यन्त दुःखी होकर मजहरुल हक ने, 10 जून, 1926 को छपरा मे, बिहार के प्रमुख कांग्रेसियों का एक सम्मेलन आयोजित किया जिसमें खिलाफत कमेटी के कुछ सदस्य तथा कुछ अन्य लोग शामिल हुए। सम्मेलन में साम्प्रदायिक कटुता के ज्वार को रोकने के लिए उपयुक्त कदम उठाने का निश्चय किया। तदनुसार यह निश्चय किया गया कि मजहरुल हक, मौलवी मुहम्मद शफी, जगत नारायण लाल, राजेन्द्र प्रसाद तथा अन्य इस प्रयोजन के लिए प्रान्त का दौरा करें। इससे नि.सदेह स्थिति मे सुधार तो हुआ परन्तु तनाव जारी रहा। इसी पृष्ठभूमि मे, नवम्बर 1926 में, स्थानीय विधान परिषद के चुनाव हुए। मजहरुल हक भी प्रत्याशी थे परन्तु वे चुनाव हार गए। उनके अपने सम्प्रदाय वालो ने तो उन्हे इसलिए छोड दिया कि वे उन्हें हिन्दू पक्षपाती कहते थे और हिन्दू मतदाता उन्हें अपना नेता ही नही मानते थे। मजहरुल हक, जो जीवन भर साम्प्रदायिक एकता के पुजारी रहे इस आघात को न सह सके। लगभग इसी समय उनके ज्येष्ठ पुत्र का देहान्त हो गया जिससे उनका दुख और भी बढ गया। ये दोनों घटनाएँ उनके लिए अत्यधिक दु.खदायी सिद्ध हुई और वे सक्रिय राजनीति से पूर्णतया अलग हो गए तत्पश्चात् उनके मित्रों ने उन्हें बहुत मनाया परन्तु वे उन्हें सन्यास के लिए किए गए अपने निर्णय से न हटा सके।

मौलाना अबुल कलाम आजाद ने अन्त तक उनके साथ अपना सम्पर्क जारी रखा। 1925 से 1927 तक देश मे साम्प्रदायिक स्थिति का तकाजा था कि कांग्रेस अध्यक्ष ऐसा हो, जो दोनो सम्प्रदायो पर अपना जोरदार प्रभाव डाल सके। मौलाना आजाद के विचार से मजहरुल हक ही ऐसे व्यक्ति थे, जो सबसे अधिक उपयोगी अध्यक्ष हो सकते थे। इसलिए उन्होंने मजहरुल हक को लिखा (20 अगस्त, 1926) : "मैं यह महसूस करता हूँ कि कांग्रेस को आगामी वर्ष मे काम के लिए केवल एक ही नारा अपनाना चाहिए—हिन्दु-मुस्लिम एकता—और कांग्रेस के सभी सगठनो का आगामी 12 महीनों के लिए इस नारे की पूर्ति के संघर्ष मे जुट जाना चाहिए। ऐसे नारे की पूर्ति के लिए एक उपयुक्त अध्यक्ष की आवश्यकता है। श्री निजाम गैर-सम्प्रदायवादी स्वतन्त्र विचार वाले और योग्य

व्यक्ति हैं। परन्तु उत्तर भारत में वे किसी काम के लिए उपयुक्त नहीं हैं। यदि आप उठें और आगामी बारह महीनों के लिए अपने को समर्पित करें, तो इसकी पूर्ति के लिए किया गया श्रम निश्चय ही प्रभावी और फलप्रद सिद्ध होगा।

"विश्वास कीजिए, गत चार या पांच वर्षों की अवधि में, मैंने सदा यह महसूस किया है कि हमारे इस समय के लक्ष्यों और कार्य को आपकी क्षमता और आपकी त्याग की भावना से कोई सहारा नहीं मिला है। और परिस्थितियों ने ऐसा रूप ले लिया है कि एक अमूल्य जीवन विस्मृति के गर्भ में चला जा रहा है। अब समय है कि आप एक नया संकल्प लेकर उठें और अपने लिए कार्य का एक अधिक व्यापक क्षेत्र बनायें। यह सच है कि इस समय लोग आपकी ओर अधिक नहीं ताकते। परन्तु एक कार्यकर्ता को अन्यों की राय पर ध्यान न देकर अपनी योग्यता पर अधिक ध्यान देना चाहिए। मुश्किल यह है कि आपके वक्तव्य ने प्रांतों को श्री श्रीनिवास की ओर देखने के लिए विवश किया है। परन्तु यदि अब भी आप जिम्मेदारी लेने को तैयार हों और मुझे इस विषय में सन्तुष्ट कर दें, तो मैं श्री श्रीनिवास के पास जा सकता हूं और उन्हें आपके पक्ष में अपना नाम वापस करने के लिए मना सकता हूं।"1

परन्तु मजहरुल हक प्रस्ताव से सहमत न हुए। उन्होंने अपना शेष जीवन अपने फरीदपुर निवास-स्थान पर बिताया तथा प्रार्थना और विभिन्न धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन में अपना समय लगाया। परन्तु बिहार सरकार की पाक्षिक गोपनीय रिपोर्ट में, नेहरू रिपोर्ट के सम्बन्ध में उनके गांव के निवास-स्थान पर उनके साथ मौलाना आजाद की मुलाकात का उल्लेख इस प्रकार किया गया है:

"अबुल कलाम आजाद 14 मार्च को, छपरा जाते समय पटना से गुजरे, जहां उन्होंने मजहरुल हक से मुलाकात की और उनसे कहा कि वे नेहरू-रिपोर्ट-समर्थक जितने मुसलमान दिल्ली भेज सकें भेजें, ताकि उन्हें

1. आइंड, एस. आर. पूर्वोक्त पुस्तक पृष्ठ 76

मुस्लिम लीग को अपने वश में करने में सहायता मिले।" कानूनी कमीशन (जो साइमन कमीशन कहलाता था) की नियुक्ति के बाद, देश मे साम्प्रदायिक स्थिति में कुछ सुधार हुआ। परन्तु किसी भारतीय को सदस्य के रूप में कमीशन में न लेने से सभी सम्प्रदायों की भावनाओं को ठेस पहुंची। नेहरु रिपोर्ट राष्ट्र की आहत भावनाओं का सीधा परिणाम थी। नेहरु रिपोर्ट पृथक निर्वाचन के पक्ष में न थी। उसमें सिफारिश की गयी थी कि चुनाव संयुक्त या मिश्रित निर्वाचक मंडलों द्वारा होना चाहिए और एक मात्र साम्प्रदायिक संरक्षण सीटों का आरक्षण होना चाहिए, और वह भी केवल उन मुसलमानों के लिए, जो वहां अल्पमत में हैं। हम नहीं जानते कि इन घटनाओं ने मजहरुल हक को कितना उत्साहित किया, परन्तु जैसा कि महात्मा गांधी ने उनकी मृत्यु पर उनके विषय में लिखा है इसमें कोई संदेह नहीं कि "हमारे अन्तःकलहों से ऊबकर वे एकान्तवास करने लगे और ऐसी अनदेखी सेवायें करने लगे जिन्हें वे कर सकते थे तथा कल्याण के लिए प्रार्थना करने लगे।"

पत्रकार, लेखक और कवि

आरंभिक जीवन से ही मजहरुल हक की साहित्य मे कुछ-कुछ रुचि थी। उनके एक प्रमुख समकालीन सच्चिदानन्द सिन्हा[1] लिखते है कि जब वे विद्यार्थी थे तब भी कविताये लिखा करते थे और विभिन्न देश-भाषाओं के पत्रों को लेख भेजा करते थे। बाद की अवधि में, अपने व्यावसायिक कार्यो मे और क्लेशजनक राजनितिज्ञ गतिविधियों में भारी व्यस्तता के बावजूद हक ने पढ़ने और लिखने मे सक्रिय रुचि कायम रखी। उन्होंने इस्लामी इतिहास और दर्शन मे भी रुचि ली। वे सूफी मत मे भी दिलचस्पी रखते थे और इस विषय पर उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी थी।

सार्वजनिक जीवन मे प्रवेश करते ही, हक ने एक अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'माडर्न बिहार' शुरू की, परन्तु वह बहुत दिनों तक जारी नही रह सकी। उनका दूसरा और अधिक महत्वपूर्ण साहसिक कार्य था सितम्बर 1921 मे एक अंग्रेजी साप्ताहिक 'दी मदरलैंड' निकालना। यद्यपि 'दी मदरलैंड' बहुत नही चला फिर भी उसने नैतिक और व्यावसायिक स्तर ऊंचा ही रखा और देश के राष्ट्रवादी पत्रों मे अच्छी ख्याति प्राप्त की। 1922 मे हक पर जो मुकदमा चला था और जो उनके जीवन का एक मोड़ था, वह 'दी मदरलैण्ड' की कहानी से घनिष्ठता से जुड़ा हुआ है, इसलिए इस पत्र की शुरूआत और कार्य का सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है :

दी मदरलैण्ड

'दी मदरलैण्ड' 30 सितम्बर, 1921 को शुरू हुआ। इस पत्र के मालिक और सम्पादक हक थे। यह अंग्रेजी साप्ताहिक 8 पृष्ट का था और

1. 'हिन्दुस्तान रिव्यू' पटना जनवरी 1930 पृ० 97

इसकी प्रत्येक प्रति का मूल्य एक आना था। यह नूरूल हसन द्वारा सदाकत आश्रम प्रिन्टिंग प्रेस, दीघा, पटना में मुद्रित और प्रकाशित होता था। यद्यपि इसमें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय[1] घटनाओं के भी समाचार प्रकाशित होते थे, परन्तु यह मुख्य रूप से खिलाफत और असहयोग आन्दोलनों के हितों के प्रति समर्पित था और इन आन्दोलनों की गतिविधियों को विस्तार से प्रकाशित करता था। हक ने पत्र का उद्देश्य और लक्ष्य, प्रथम अंक के सम्पादकीय स्तम्भ में, इन शब्दों में निरूपित किया: 'दी मदरलैण्ड' किस पक्ष का समर्थन करता है? यह उदारवादी होगा या स्वराज्यवादी? यह सरकार का समर्थन करेगा या जनता का पक्ष लेगा? मान्टफोर्ड सुधारों के प्रति इसका क्या रवैया होगा? ···हमारा उत्तर है कि हम अपनी इस अद्भुत भूमि में रहने वाले सभी लोगों के लिए शुद्ध, सरल और अमिश्रित न्याय के पक्षपाती हैं। ···यह (मदरलैण्ड) व्यक्तियों के मामलों में बहुत कम दखल देगा, परन्तु दुर्व्यवस्थाओं और क्रूर कार्यों का डट कर विरोध करेगा। ······'मदरलैण्ड' भारतीय राजनीति में केवल भारत की महान राष्ट्रीय संस्था, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, द्वारा निर्धारित नीति पर चलना ही ठीक समझता है। ···हर हालत में, हम कांग्रेस के कार्यक्रम की दो बातों हिन्दू-मुस्लिम एकता और स्वदेशी के औचित्य और सच्चाई

1. इसमें से अधिकांश मुस्तफा कमाल के नेतृत्व में तुर्कों के वीरतापूर्ण राष्ट्रीय संघर्ष और लोसन की संधि के लिए की गयी राजनीतिक वार्ता से सम्बन्धित थे। भारतीय राष्ट्रीय संघर्ष के मार्ग एवं महत्व पर अमरीकी पत्रों की टिप्पणियों के उदाहरण अधिक रोचक हैं। इस प्रकार इसने अपने 16 जून 1922 के अंक में अंग्रेजों के विरुद्ध संयुक्त हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष के नये रूप तथा अपनी शक्ति का पुनर्गठित करने एवं ईसाइयों को दबाने के लिए मुसलमानों द्वारा चलाये जाने वाले विश्वव्यापी आन्दोलन का" का एक भाग बनने की उसकी सम्भावना के बारे में अमरीकी पत्र-पत्रिकाओं की टिप्पणियां प्रकाशित की। 7 जुलाई के अंक में इसने 'गांधी आन्दोलन' के महत्व पर एक लम्बा सीधा लेख न्यूयार्क के 'दी फ्रीमैन' से उद्धृत किया। लेखक का विचार है कि आन्दोलन का मुख्य कारण व्यक्ति और राज्य के अधिकारों तथा नौकरशाही के पंजों से व्यक्ति के मुक्ति के सम्बन्ध में विवाद था। 9 जनवरी, 1921 के अंक में इसने मोटे शीर्षकों में पहले पृष्ठ पर अमरीका के 23 सिनेटरों, जजों, सम्पादकों और सार्वजनिक व्यक्तियों का एक सन्देश छापा, जिसमें भारतीयों को आश्वासन दिया गया था 'हम आपकी सफलता बढ़ाने में सहायता करेंगे' "आप स्वयं अपना निर्णय कीजिए।"

के बारे में पूर्णतया आश्वस्त है। एक से भारत वास्तविक राष्ट्र बनेगा और दूसरी से भारतीय आत्म निर्भर बनेंगे। .....हम चर्खा चलाने और खद्दर पहनने की वकालत करेंगे —किसी को हानि पहुंचाने या तंग करने के लिए नहीं, अपितु केवल अपने को आत्मनिर्भर बनाने के लिए। यदि हमारी अन्तरात्मा यह नितान्त आवश्यक समझती है कि अपनी जनता और अपने देश की भलाई के लिए, हमें कांग्रेस के कार्यक्रम की किसी बात के विरुद्ध आवाज उठानी चाहिए, तो हम ऐसा करने में नहीं हिचकिचायेंगे, भले ही हमारी आवाज कितनी ही कमजोर और, प्रभावहीन क्यों न हो। ऐसा करने से भले ही हमें अधिक उपलब्धि न हो, परन्तु अपने कर्तव्य का पालन तो कर ही लेंगे और यही शायद किसी व्यक्ति को मिलने वाला मुख्य और एकमात्र सन्तोष है। क्योंकि हमारे और कांग्रेस के विचारों में पूर्ण साम्य है, अतः ऐसे अवसर स्वभावतः कम ही आयेंगे। परन्तु यह अच्छा है कि हम आलोचना का अधिकार अपने लिए सुरक्षित रखें।
"यह हक के लिए बड़ी तारीफ की बात है कि वे 'दी मदरलैण्ड' के तेजस्वी जीवन में, भले ही वह संक्षिप्त रहा, आरंभ से अन्त तक, इस निश्चय पर दृढ़ रहे।"

यहां यह उल्लेख करना रोचक होगा कि विज्ञापनों के मामले में भी--जिसमें अन्यथा गम्भीर समाचारपत्र भी प्रलोभनों में फंस जाते हैं--'दी मदर लैण्ड' ने अपने लिए एक ऊंचा नैतिक स्तर निश्चित कर लिया था। इसके स्तम्भ में प्रायः यह सूचना छपती थी कि "केवल स्वदेशी वस्तुओं और उद्योगों के यथार्थ विज्ञापन स्वीकार किए जायेंगे और औषधियों आदि का कोई भद्दा विज्ञापन 'दी मदरलैण्ड' में नहीं छपने दिया जाएगा। इस पर पूरी तरह अमल किया गया और अधिकांश विज्ञापन या तो सदाकत आश्रम प्रेस के प्रकाशनों के बारे में होते थे या स्वदेशी वस्तुओं और अन्य दस्तकारी की चीजों के बारे में।

'दी मदरलैण्ड', की प्रसार संख्या अधिक थी। इसके ग्राहक अन्य प्रान्तों में भी थे और विदेशों में भी थे। इसके आरम्भ होने के तीन महीने के अन्दर ही, "हमारे पाठकों की मांग के कारण" यह निश्चय किया

गया कि इसे 3 जनवरी, 1922 से अर्ध-साप्ताहिक बना दिया जाए, जो प्रत्येक सोमवार और बृहस्पतिवार को प्रकाशित हो।

इसके बाद तुरन्त ही, सरकार इससे नाराज हो गयी। इसके मुद्रक और प्रकाशक एम. एस. एम. शर्मा को नोटिस देकर सूचित किया गया कि पत्र मे प्रकाशित कुछ लेख 'आपत्तिजनक' (एक्स्ट्रावेगेन्ट) पाए गए है और यह निदेश दिया गया कि 1910 के प्रेस ऐक्ट की धारा 8 के अनुसार वे 1000 रु. की जमानत जमा करे। प्रकाशक ने सरकार को उत्तर दिया कि नोटिस की शब्दावली अत्यन्त अस्पष्ट है और पूछा कि कौन सा लेख 'आपत्तिजनक' पाया गया है और किस दृष्टि से। जिलाधीश के नोटिस और शर्मा द्वारा दिए गए उत्तर का पूरा पाठ, 19 जनवरी, के अंक में, 'प्रेस ऐक्ट का मृत्यु-घोष: "दी मदरलैण्ड ताजा बलि" शीर्षक से छापा गया। उसी शीर्षक के नीचे एक संक्षिप्त सम्पादकीय टिप्पणी मे, हक ने 'आपत्तिजनक' के अस्पष्ट आरोप का विरोध किया। उन्होने जमानत जमा करने से इन्कार कर दिया और पत्र कुछ दिन बन्द रहा। 29 जनवरी को, मुख्य शीर्षक 'विदाई' और उपशीर्षक 'अल्लाह-ओ-अकबर, को साथ एक-एक पृष्ठ का अंक निकला, जिसमे हक का निम्नांकित विदाई सन्देश था बिहार सरकार ने 'दी मदरलैण्ड' की हत्या करने का निश्चय कर लिया है। हम गिड़गिड़ा नही सकते। हम दबाव में नही आ सकते।....हमने आत्म संयम से काम लिया है और दूसरों को नाराज न करने का प्रयत्न किया है। परन्तु हमने शासन व्यवस्था को निश्चय हीं नही बख्शा, क्योकि हम इसे पूरी तरह दूषित समझते हैं।...हमने निर्भीकता से सत्य कथन किया है, पूरी तौर से यह जानते हुए भी कि यह 'विधि एवं व्यवस्था' के कर्णधारो को पसन्द न आएगा। हमारा विदाई अभिवादन 'एड्यू' (सदा के लिए) नही, अपितु 'औं रीवार' (पुर्नमिलन तक) है। बन्दे मातरम्।

पत्र आगामी वर्ष मई से पुनः साप्ताहिक के रूप मे निकलने लगा। परन्तु शीघ्र ही सरकार की ओर से इसे एक और धक्का लगा। परन्तु यह सरकार का सीधा आक्रमण नही था। एक वरिष्ठ सरकारी अधिकारी, जेल महानिरीक्षक, सर हुरमूसजी बनातवाला ने 'दी मदरलैण्ड' पर मान-

हानि का मुकदमा चला दिया। इस समय, महात्मा गांधी द्वारा शुरू किए गए असहयोग के नए प्रयोग के प्रभाव से सारे देश में हलचल मची हुई थी। इसने जनता को आत्म-विश्वास और आशा की नयी भावना प्रदान की थी और सरकार उसे बलपूर्वक दबाने की सख्त कोशिश कर रही थी। हक ने सरकार की दमन नीति का, विशेष रूप से जेलों में राजनीतिक बन्दियों के साथ किए जा रहे अत्याचारों का निर्भीकता से पर्दाफाश किया। जेल महानिरीक्षक सर हुरमुसजी बनातवाला ने बक्सर जेल में बन्दियों के साथ दुर्व्यवहार के सम्बन्ध में लिखे गए हक के [illegible] लेख पर आपत्ति की और उनके विरुद्ध फौजदारी में दावा कर दिया। सरकारी न्यायालयों और सम्पूर्ण न्यायपद्धति के, जिसके वे अंग थे, बहिष्कार के लिए प्रतिबद्ध असहयोगवादी होने के कारण, हक ने अपने बचाव के लिए कुछ भी करने से इन्कार कर दिया और जमानती बांड न देने पर उन्हें 26 जुलाई को जेल में बन्द कर दिया गया।

उनकी गिरफ्तारी ने जनता में [illegible] कर दिया। बिहार व उड़ीसा की विधान परिषद में राजनैतिक बन्दियों के उत्पीड़न के बारे में प्रश्न पूछे गये। 'दी इण्डिपेन्डेन्ट', [illegible] आदि अनेक समकालिक समाचार पत्रों ने हक की [illegible] की और उनकी देश-सेवा की प्रशंसा की। [illegible] मजरुहल हक' कहे जाने लगे।

ने प्रांत में जो भावना पैदा की है, वह कभी ऐसे हिंसक तरीकों से 'मर' सकेगी।" हक ने जनता मे व्याप्त इस आशंका का भी उल्लेख किया कि उनकी गिरफ्तारी सरकार की उस योजना का एक अंग थी, जो गया में कांग्रेस और खिलाफत सम्मेलन आयोजित करने के घोषित कार्यक्रम को रोकने की दृष्टि से प्रान्त के सभी नेताओं को गिरफ्तार करने के लिए बनायी गयी थी। अपनी गिरफ्तारी के इस 'सार्वजनिक पहलू' से हटकर 'व्यक्तिगत पहलू' पर आते हुए, हक ने महानिरीक्षक को विश्वास दिलाया कि असहयोगवादी होने के कारण वे अपना बचाव नहीं करेंगे, इसलिए उनकी (महानिरीक्षक की) जीत निश्चित है। परन्तु वे अपने भावी कारावास को अपने कर्त्ता के साथ वास्तविक मिलन के लिए और अपने सभी पापों पर पश्चाताप प्रकट करने के लिए, ईश्वर प्रदत्त अवसर समझते थे और ऐसा अवसर प्रदान करने के लिए उन्होंने महानिरीक्षक को धन्यवाद दिया।

हक की गिरफ्तारी के बाद, कृष्णवल्लभ सहाय (बिहार के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री) 'दी मदरलैण्ड' के कार्यकारी सम्पादक बन गये। जब तक हक जेल में रहे, 'दी मदरलैण्ड' के सभी अंकों में मुख पृष्ट पर यह शीर्षक छपता रहा--'संस्थापक और सम्पादक देशभूषण फकीर मजरुल हक ... जेल में।' "16 सितम्बर को, जेल से छूटने के बाद हक ने पत्र से अपना सम्बन्ध जारी रखा तथा सितम्बर और अक्तूबर के अंकों में कुछ सम्पादकीय भी लिखे। परन्तु मालूम होता है अक्तूबर के अन्त में किसी समय उन्होंने पत्र से नाता तोड़ लिया और कृष्णवल्लभ सहाय नियमित सम्पादक हो गये। उसके तुरन्त बाद पत्र निकलना बन्द हो गया।

मजरुहल हक के जीवन के सबसे अधिक सफल समय में उनके विचारों और किये गये कामों के अध्ययन एवं मूल्यांकन के लिए स्रोत सामग्री के रूप में 'दी मदरलैंड का मूल्य' बहुत अधिक है इसके सम्पादकीय स्तम्भों में, हक ने केवल खिलाफत और असहयोग आन्दोलनों जैसे सामयिक विषयों पर ही स्पष्टता से अपने विचार प्रकट नहीं किये, अपितु अन्य बड़े और सामान्य विषयों, जैसे स्वतन्त्रता, सहनशीलता, हिन्दू-मुस्लिम एकता, भावी आंग्ल-भारतीय सम्बन्ध, आयरिश स्वतन्त्रता आदि पर भी विचार

प्रकट किये । 'दी मदरलैंड' की प्रतियां अब अत्यन्त दुर्लभ है। [1]इसलिए, इन विषयो पर हक़ के लेखो से कुछ उदाहरण देना समीचीन होगा ।

असहयोग (दी मदरलैंड, 16 जून, 1922)

"मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । इसलिए उसका अपने साथी प्राणियो के साथ मिल-जुल कर, सहयोग से, रहना स्वाभाविक है ।...... अतः नितान्त 'असहयोग' नही हो सकता । वास्तव मे, हमारा स्पष्ट मत है कि असहयोग एक बुराई है, जिससे सभी बुद्धिमान लोगो को दूर रहना चाहिए । परन्तु जिस प्रकार गंभीर बीमारियो मे डाक्टर जहर दे देता है, जिसे स्वस्थ आदमी को वह कभी नही देगा, उसी प्रकार कुछ मामलो मे असहयोग जरूरी हो जाता है । ...असहयोग केवल कमजोर के लिए ही नही, ताकतवर के लिए भी आवश्यक है । यह मानव जाति की नैतिक बुराईयो के लिए एक प्रकार की औषधि है । .....निःसंदेह असहयोग निराशाजनक कठिन स्थिति पैदा कर देता है । जो यदि अधिक समय तक बनी रहे तो, दोनो पक्षो को नष्ट कर सकती है । ...निश्चय ही, भारत अशान्ति के इस जीवन को सदा नही जी सकता । विरोधी पक्षो मे समझौते का कोई न कोई रास्ता जरूर निकालना चाहिए । भारतीय जनता को कई शिकायते है । ...भारत सरकार इन शिकायतो के औचित्य को स्वीकार परन्तु झूठी शान के कारण उन्हें दूर करने को तैयार नही है।..... मानव जाति के पाचवें हिस्से की निराशा और सक्रिय विरोध की स्थिति मे लाकर खडा कर देना, हमारे विचार से ऐसी बुद्धिमत्ता का काम है, जिससे प्रत्येक राष्ट्र को बचाना चाहिए ।...भारतीयो का यह कर्तव्य है कि वे देश मे ऐसा तूफान खडा कर दें, जो ब्रिटिश सरकार को भारत के मामलो पर भी कुछ ध्यान देने को बाध्य कर दे । परन्तु ऐसा करने से पहले भारतवासियो को चाहिए कि वे अपने घर को ठीक करें और अपने संगठन को पूरा करें ।.....हमारे काम का कार्यक्रम हमारे वन्दो नेता ने निर्धारित कर दिया है और हमें इसे पूरा करने मे तत्पर हो जाना चाहिए।

[1] हम बेगम हक़ के जो हाल ही मे दिवंगत हुई है के बडे आभारी हैं कि उन्होंने दी मदरलैण्ड के पुराने अंको का अपना संग्रह हमारे पास भेजने की कृपा की है। नीचे और अन्यत्र दिये गये सभी उद्धरण उनके संग्रह मे उपलब्ध अंको से दिये गये हैं।

खद्दर अवश्य पहननी चाहिए। जिस प्रकार पुराने जमाने में हिन्दू और मुसलमान भाई-भाई की तरह रहते थे, उसी प्रकार अब भी रहना चाहिए।······अपने संगठन को पूरा करके हमें अन्त तक लड़ने का संकल्प कर लेना चाहिए।"

खिलाफत का प्रश्न (दी मदरलैंड, 19 जनवरी, 1922)

········संसार के प्रचारक जो कुछ कहें, उस सबके बावजूद, खिलाफत का प्रश्न विशुद्ध रूप से एक धार्मिक प्रश्न है, और उसे कड़ाई के साथ इस्लाम धर्म की व्यवस्थाओं के अनुसार ही सुलझाना चाहिए····अन्य मान्यताओं के लोग गलती से यह काम समझ लेते हैं कि खिलाफत का प्रश्न केवल एक राजनैतिक प्रश्न है और अन्य राजनैतिक प्रश्नों की भाँति यह भी राजनय के मान्य नियमों द्वारा हल किया जा सकता है। कुस्तुनतुनिया (कान्स्टेन्टिनोपिल) को छोड़ कर, जो खिलाफत का मुख्यालय है, अंगोरा, स्मर्ना और तुर्क लोगों को प्रभावित करने वाला समझा जा सकता है, क्योंकि देश उनकी मातृभूमि है। संसार के अन्य मुसलमानों के साथ उनका सम्बन्ध केवल इस हद तक है कि इस्लाम के आध्यात्मिक अध्यक्ष द्वारा उन पर अधिकार आवश्यक है।

'जजीरात-उल-अरब' की स्थिति बिल्कुल भिन्न है। इसमें पेलेस्टाइन हेडजाज, अरब और मेसोपोटामिया शामिल है।···'जजीरात-उल-अरब' इस्लाम के अनुयायियों की गम्भीर धार्मिक भावनाओं को स्पर्श करता है और जब तक अधिकारवान खलीफा वहां अधिकारच्युत रहेगा, तब तक ससार में शक्ति नही रहेगी, तथा उनको आराम न मिलेगा, जो इसमें हस्तक्षेप करेंगे। यह देश मुस्लिम खलीफा के आधिपत्य में, रहना चाहिए।... राजनय और न्याय का तकाजा है कि खिलाफत के प्रश्न को हमारे द्वारा ऊपर सुझाए गये तरीके से अविलम्ब हल किया जाए।"

स्वतन्त्रता (मदरलैंड, 9 जनवरी, 1922)

"स्वतन्त्रता प्रत्येक राष्ट्र का जन्म सिद्ध अधिकार है। यह दैवी अधिकार है। जो राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र के अधीन है, उसे श्रम करने की

वह स्वतंत्रता कभी नहीं मिल सकती, जिसे परमात्मा अपने जीवों को देना चाहता है। इस ईश्वर-प्रदत्त अधिकार को ऐसे किसी राष्ट्र को देने से इन्कार करना ईश्वर को ही नकारना है।..........साथ ही, हमें स्वतन्त्रता को हिंसा से नहीं मिलाना चाहिए। ये दोनों दो अलग-अलग वस्तुएं है और एक दूसरी की आवश्यक पूरक नहीं है।"

सहनशीलता (दि मदरलैंड, 9 जून, 1922)

"यह सिद्धान्त है कि विश्वास प्रतीती का विषय है और वह दबाव से पैदा नहीं किया जा सकता, एक सनातन सत्य माना जाता है"........ परन्तु संसार में सदा ऐसा नहीं रहा। मध्य युग में धर्म के नाम पर भीषण उत्पीड़न इस विश्वास से किए गये कि काफी दबाव डालने से लोगों के दिमागों को उत्पीड़क की इच्छानुसार मोड़ा जा सकता है। उस समय के लोगों को यह नहीं सूझा कि उन्होंने लोगों के दिमाग को नहीं, शरीर को अपनी इच्छानुसार मोडा था।...... जिस प्रकार पुराने जमाने के लोग धर्म के बारे में सोचते है कि जिस पार्टी में वे है, वही सम्पूर्ण सत्य की एकमात्र ठेकेदार है तथा विरोधी पार्टी एक उन्मुक्त दिवालिया है, जो सत्य का नाम भी नहीं जानती।.....सत्य किसी पार्टी, सम्प्रदाय या वर्ग का इजारा नहीं हो सकता। यदि हम केवल अधीरता के सामने न झुके और दूसरों को अपना मत छोड़कर हमारा मत स्वीकार करने की उत्सुकता पर नियन्त्रण रखें तो हम पायेंगे कि........घृणा, तिरस्कार शत्रुता तथा अन्य हजारों बुराईयां असहिष्णुता से पैदा होती हैं। प्रेम, स्नेह, विश्वास सहिष्णुता के फल है। आप किसी सेब के पेड़ से आम का फल और किसी आम के पेड से सेब का फल नहीं तोड सकते। अत्याचार प्रेम को और प्रेम घृणा को पैदा नहीं कर सकता।"

हिन्दु-मुस्लिम एकता (दी मदरलैंड, 22 सितम्बर, 1922)

इस प्रश्न को हमने अपने कार्यक्रम में सबसे अधिक प्राथमिकता दी थी। 1910 में ही उन्होंने घोषित कर दिया था कि 'मेरे विचार से इस समय सब प्रश्नों का प्रश्न यह है कि दोनो सम्प्रदायों को एक कर दिया जाए ताकि वे हमारी मातृभूमि के पुनरुद्धार के लिए कन्धे से कन्धा मिलाकर

काम कर सके इस प्रकार एक दूसरे अवसर पर उन्होने कहा था हम हिन्दू हो या मुसलमान, सब एक ही नाव में सवार है। हम साथ ही साथ तैरेंगे या साथ ही साथ डूब कर मरेंगे।" परन्तु मालूम होता है, असहयोग आन्दोलन कि समाप्ति से पहले, इस महत्वपूर्ण क्षेत्र मे प्राप्त सफलता के बारे मे उनका भ्रम दूर होने लगा था। 22 सितम्बर का उनका सम्पादकीय भ्रम-मुक्ति की इस भावना को स्पष्ट रूप से प्रकट करता है। उन्होने लिखा था "हमे यह सोचकर दुख होता है कि काग्रेस और समाचारपत्रों द्वारा बार-बार दी गयी चेतावनियो के बावजूद, हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों में तनाव दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। हम तथ्यो का स्पष्ट वर्णन करते है, हम अपने को धोखा नही देना चाहते। कुछ को छोडकर ऐसा कोई प्रान्त नही है, जहा दोनों सम्प्रदायो मे कलह नही हुआ।.. नाश की असली जड़ तो हमारे हृदय मे है। यद्यपि हम भाई-भाई की तरह मिलते हैं, परन्तु हमारी विचारधारायें कभी निर्मल नहीं होतीं। हमने स्वराज्य के लिए सब कुछ दाव पर नही लगाया। छोटे-छोटे प्रश्न, जो हमारे स्वराज्य के आदर्श के विपरीत है, हर समय हमे आक्रात करते रहते है और हमारे कार्यक्रम की मुख्य धारा को बदल लेते है।·······जब तक हमारे आदर्श हमको नियन्त्रित न करेंगे, जब तक हम एक ही उद्देश्य को लेकर चलेंगे जब तक स्वराज्य की प्राप्ति हमे निरन्तर पीडित और व्यथित न करेगी, तब तक हम अपना हिन्दू-मुस्लिम कलह समाप्त न कर सकेंगे"

भावी आंग्ल-भारतीय सम्बन्ध (दि मदरलैंड, 19 जनवरी, 1922)

उल्लेखनीय भविष्य ज्ञान के साथ हक ने लिखा : "स्वतन्त्रता घृणा के बिना रह सकती है। यद्यपि इगलैंड और अमरीका दोनो एक दूसरे से स्वतन्त्र है, फिर भी इगलैंड अमरीका से घृणा नही करता। हमे यह भी नहीं चाहिए कि भारत स्वतन्त्र होते ही प्रत्येक अग्रेज से यह कहेगा कि वह सामान बांधे और अलविदा कह कर अपने देश को चला जाए।···· एक दूसरे के प्रति प्रेम और आदर का भाव केवल स्वतन्त्रता से ही पैदा हो सकता है। जब दोनो राष्ट्र स्वतन्त्र होंगे तो झगड़े के लिए कुछ न रहेगा। वे जैसा चाहेंगे वैसा अपना जीवन बनायेंगे।

आयरलैंड, (दी मदरलैंड, 7 जुलाई, 1922)

आयरलैंड स्वतन्त्रता के लिए अपने संघर्ष में रत है।······बारहवीं शताब्दी के आरम्भ से ही आयरलैंड और इंग्लैंड के मध्य संघर्ष चल रहा है एक तो अपनी स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न कर रहा है और दूसरा उसे हड़पने के लिए।······इंग्लैंड ने अपने स्वाभाविक तरीके से दमन का अपना प्यारा खेल खेलने की कोशिश की। परन्तु क्या सख्त से सख्त दमन का चक्र किसी के हृदय से स्वतन्त्रता की अभिलाषा को निकाल सकता है।··· अपने दमन के खेल में सफल न होने पर, इंग्लैंड ने अपनी नीति ही बदल दी और कुछ अन्य उपाय किये।······जो सिर लगातार 600 वर्षों तक इंग्लैंड के महाबली सैनिकों के समक्ष नहीं झुके थे, वेही अब सोने और चांदी के ढेरों के सामने नत हो गये।·········कुछ वर्षों की विश्रान्ति के बाद, आयरलैंड डेनियल ओ-कोनेल के नेतृत्व में फिर जाग उठा। वर्तमान संघर्ष उसी जागरण का विस्तार है।······हम कहते है, आयरलैंड आगे बढ़े। सर्वशक्तिमान ईश्वर अधीनीकृतों को स्वतन्त्रता और पीड़ितों को आराम दे और इस प्रकार संसार को शान्ति प्रदान करे।"

मजहरुल हक के सम्पादकत्व में एक और साप्ताहिक पत्र 'अल वतन' उर्दू में तथा एक मासिक पत्रिका 'दी पटना रिव्यू' अंग्रेजी में निकालने का प्रस्ताव था। 'दी मदरलैंड' के कई अंकों में इसकी घोषणा की गयी थी और प्रस्तावित पत्रों के लिए उपसंपादकों की जगहों के वास्ते विज्ञापन भी छप गये थे। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि हक की गिरफ्तारी और मुकदमें के कारण वह योजना छोड़ दी गई।

लेखक और कवि

मजहरुल हक ने उर्दू और अंग्रेजी में कई पुस्तकें लिखी और संकलित की। अन्यों द्वारा लिखी गयी कुछ पुस्तकों की भूमिकायें या प्राक्कथन भी उन्होंने लिखे। उनके लेखों को, जिनमें से अधिकांश अब उपलब्ध नहीं हैं, दो श्रेणियों में रखा जा सकता है—1. सामान्य राजनीतिक महत्व के प्रचलित विषयों से सम्बन्धित और 2. धार्मिक एवं साहित्यिक विषयों से सम्बन्धित

सामान्य प्रचलित राजनीतिक विषयों पर उनके लेखों में से निम्नलिखित का उल्लेख किया जा सकता है :

'दी ग्रेट ट्रायल' (महा–अभियोग)

सदाकत आश्रम प्रिंटिंग प्रेस द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक का मूल्य आठ आना था। 125 पृष्ठ की इस पुस्तक में निम्नांकित बातें थीं—"महात्मा जी की गिरफ्तारी तथा मजिस्ट्रेट और सेशन (सत्र) न्यायालय के समक्ष उनके मुकदमें की सुनवाई का पूरा विवरण, वे सभी लेख, जिनके लिए वे दोषी पाये गये, उनके मौखिक और लिखित वक्तव्य, निर्णयों और आदेशों का पाठ, गिरफ्तारी से पहले और बाद में दिया गया उनका सन्देश, आदि। भूमिका मजहरुल हक की थी।"

'दी खिलाफत एंड इंग्लैंड'

लेखक : सैयद महमूद, प्रकाशक-सदाकत आश्रम, मूल्य : 1 रु० 8 आने। इस पुस्तक का प्राक्कथन प्रसिद्ध मर्माड्युक पिक्थाल ने लिखा था और भूमिका मजहरुल हक ने। यह पुस्तक खिलाफत आन्दोलन के अंग के रूप में 1920-21 में कभी लिखी गयी थी और दूसरा 'संशोधित एवं बहुपरिवर्धित संस्करण' 1922 के आरम्भ में छपा था।

'ब्रिटेन इन ईराक'

प्रकाशक : सदाकत आश्रम प्रिन्टिंग प्रेस, मूल्य : 8 आना, आमुख : मजहरुल हक द्वारा।

'तुफान–ए–नूह'

यह पुस्तक सूफी मत पर लिखी गयी थी। दुर्भाग्य से अब यह उपलब्ध नहीं है, इसलिए इसका विस्तृत मूल्यांकन संभव नहीं है। परन्तु, मजहरुल हक के एक निकट सम्बन्धी और साथी के साक्ष्य के अनुसार यह "बहुत विद्वतापूर्ण ग्रन्थ था।"

कहा जाता है कि हक़ ने दो और ग्रन्थ लिखे थे, परन्तु अब दोनों ही अनुपलब्ध हैं। एक का नाम था 'मजहरुल उलूम', परन्तु उसके विषय का पता नहीं है। दूसरे का विषय था कबूतर-पालन।

हक़ ने उर्दू और फ़ारसी में कविताएँ भी लिखीं, परन्तु उनका संग्रह छपा नहीं। पांडुलिपि भी खो गयी, मालूम पड़ती है। 26 अगस्त, 1923 के 'खिलाफ़त गजट'[1] में प्रकाशित उनके फारसी के एक चतुष्पदी अनुच्छेद में डार्विन के मानव विकास के सिद्धांत पर कटाक्ष किया गया है। यह नीचे उद्धृत है:

نسل بزنه رفته رفته بزنه بیدم‌شده
نام آدم زاد گشت و شارب صدخم‌شده
از سرور و جست حرکاتش شده پامالیان
دورہ باطل بپا و مظہرالحق گم شده

इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है:

(बन्दर) ऐप का वंशज धीरे-धीरे पुच्छहीन हो गया और मनुष्य का नाम से जाना जाने लगा और फिर वह सैकड़ों पीपे (शराब के) खाली करने लगा। उसकी नशे की हरकतों ने बहुत विनाश किया, विप्लव हो रहा है और (ऐसे समय में) मजहरुल हक़[2] (सत्य का प्रकाश) सुप्त हो गया है।

1. एक उर्दू दैनिक, समाचार पत्र सदाव्रत प्रेस, 'नारिस्तां', प्रदर्शनी मार्ग, पटना, जिसके संपादक एम० ए० हमीद थे।
2 यहां 'मजहरुल हक़' में श्लेष है। इन शब्दों का शाब्दिक अर्थ है 'सत्य का प्रकाश' और ये ही कवि के नाम को भी घोषित करते हैं।

अन्तिम वर्ष और मृत्यु

1922 के उत्तरार्ध में बनातवाला मानहानि अभियोग में मजहरुल हक का अभियोजन उनके जीवन का एक मोड़ था। वे 26 जुलाई को गिरफ्तार किये गये और उन्हें 1000 रु० जुर्माने अथवा 3 महीने की सादा सजा का हुक्म हुआ। हक ने जुर्माना देने से इन्कार किया, इसलिए उन्हें जेल भेज दिया गया। यद्यपि 16 सितम्बर को उन्हें अकस्मात् छोड़ दिया गया, परन्तु एक दूसरे मानहानि के अभियोग में उनके विरुद्ध कार्रवाई कुछ समय तक और चली।

इसी समय से, हक के चरित्र में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देने लगा। असहयोग आन्दोलन में शामिल होते ही, जिस ढंग से उन्होंने अपने शानशौकत वाले और ऐश्वर्यपूर्ण जीवन को सादा और कठोर बनाया, यह सुविदित है परन्तु यह परिवर्तन केवल बाहरी नहीं था, गहरा आध्यात्मिक परिवर्तन भी इसके साथ ही हुआ। इस अवधि में हक के लेखों से यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। अपनी गिरफ्तारी से ठीक पहले, हक ने 14 जुलाई, 1922 के 'दी मदरलैंड' में लिखा: "56 वर्ष तक अंधकार में भटकने तथा सभी प्रकार के मानव-सुलभ पापों में लिप्त रहने के बाद, यह वास्तव में पहला अवसर है, जब मैं अपने कर्ता के साथ वास्तविक सम्पर्क में आऊंगा और अपने समस्त पापों का प्रायश्चित करूंगा। .... शरीर और सांसारिक पदार्थों पर अत्यधिक ध्यान दिया गया है तथा आत्मा और अभौतिक पदार्थों पर बहुत कम। अब खुदा की कृपा से मेरे जीवन में एक नया मोड़ आने वाला है।" दूसरे सप्ताह का सम्पादकीय आध्यात्मिक परिवर्तन को और भी अधिक स्पष्टता से प्रकट करता है। हक ने लिखा, "मुझे इस संसार में, जहां माया का एकछत्र राज्य है, निरुद्देश्य भटकने के लिए अभिशप्त किया गया है।

कोई भी इच्छा रखने की क्या आवश्यकता है। तृष्णा आत्मा का हनन कर देती है।····अब, मुझे आशा है कि मैं अपने जीवन की उस अवस्था में पहुंच गया हूं, जहाँ इस संसार की वासनायें मनुष्य के आचरण को प्रभावित नहीं करतीं। मैं अपने को बहुत दिनों तक धोखा देता रहा और अपने भावों को तरह-तरह से छिपाता रहा। शायद मेरे वर्तमान रुख में भी शैतान मुझे धोखा दे रहा है। परन्तु मुझे यह सन्तोष है कि मैं यह जानता हूं कि मैं जो कुछ कह रहा हूं, ईमानदारी और सच्चाई से कह रहा हूं।"

हक असहयोग आन्दोलन के संचालन के ढंग से भी नाखुश मालूम पड़ते थे। 18 मई, 1922 के सम्पादकीय में, उन्होंने आन्दोलन के लाभों और हानियों का लेखा-जोखा किया तथा उन्हें आन्दोलन के संचालन में जो गलतियां मालूम पड़ती थीं, उन पर स्पष्टता से अपने विचार प्रकट किये। विधान परिषदों में प्रवेश अथवा उनके बहिष्कार के प्रश्न पर छिड़े विवाद ने उन्हें और भी नाराज कर दिया। इस प्रश्न पर 'दी मदरलैंड' से भी उनका मतभेद हो गया, क्योंकि कृष्णवल्लभ सहाय के सम्पादकत्व में अब वह परिषद (कौंसिल) प्रवेश के प्रस्ताव का समर्थन करने लगा था। हक इस विचार के विरुद्ध थे, इसलिए उन्होंने 'दी मदरलैंड' के सम्पादक को एक पत्र भेजा (24 नवम्बर, 1922), जिसमें उन्होंने लिखा कि नये सम्पादक के रूप में आप (श्री सहाय) का अधिकार है कि आप अपनी अन्तरात्मा के अनुसार चलें और अपनी योग्यता के अनुसार पत्र की नीति निर्देशित करें, परन्तु मैं चाहूंगा कि आप अपने किसी आगामी सम्पादकीय में ऐसी कुछ टिप्पणी जोड़ कर मेरी स्थिति स्पष्ट करें, जिसका आशय निम्नांकित हो:—"हमें विदित है कि मौलवी मजहरुल हक परिषद-प्रवेश के बारे में अधिक उत्सुक नहीं हैं, परन्तु वे इसका स्पष्टीकरण आवश्यक समझते हैं क्योंकि अन्यथा लोग यह समझ सकते हैं कि "क्योंकि 'दी मदरलैंड' परिषद-प्रवेश के पक्ष में है, इसलिए मैं भी इसके पक्ष में होऊंगा।" यद्यपि हक ने सम्पादक को विश्वास दिलाया कि वे उनसे नाराज नहीं हैं, फिर भी उनके पत्र के निम्नांकित वाक्य उनके मोह-भंग की तीव्र भावना को स्पष्टतया प्रकट करते हैं: "एकमात्र वस्तु, जो मुझे व्यथित करती है, यह है कि असहयोग की हत्या उसके

शत्रुओं ने नहीं, मित्रों ने की है और अब उसे शान से दफनाना शेष है। मैं प्रयत्न करने पर भी यह नहीं समझ सकता कि परिषदों को (अन्दर से) तोड़ने से हमारा हित-संवर्धन कैसे हो सकता है। और ध्यान रखिए, मैं एक क्षण के लिए भी यह विश्वास नहीं करता कि हम परिषदों को तोड़ सकते हैं। अंग्रेज लोग परिषदें न रहने पर, बिना ही परिषदों के शासन का काम चलाते रहेंगे और दोष हमें देते रहेंगे। आह! हमारे दल में यह विभाजन अत्यन्त खेदजनक है और मुझे दुख है कि मैं इस सब से अलग हो जाऊंगा। ···मैं पूरी तरह शान्त रहना चाहता हूं और यह तमाशा देखना चाहता हूं जिसकी समाप्ति निश्चय ही पीड़ा और विनाश में होगी।"

इसी मानसिक स्थिति में हक ने पटना छोड़ा और स्थायी निवास के लिए फरीदपुर चले गये। अगले कुछ वर्षों में मालूम पड़ता है, वे व्यापक राजनीतिक गतिविधियों से अलग रहे। परन्तु, जैसा कि आमतौर से समझा जाता है उन्होंने समस्त सार्वजनिक क्रियाकलाप से अपने को अलग नहीं किया। सारन जिला बोर्ड के प्रथम निर्वाचित भारतीय अध्यक्ष के रूप में उनका कार्य (1924-27), 1926 में बिहार विधान परिषद के लिए चुनाव में उनकी विफलता और इस अवधि में उनके द्वारा लिखे गये पत्र यह प्रकट करते हैं कि सार्वजनिक और धर्मार्थ कार्यों में उन्होंने जरूर भाग लिया, परन्तु उनकी गतिविधियों का दायरा अब बहुत सीमित हो गया था।

सारन जिला बोर्ड के प्रथम निर्वाचित अध्यक्ष

नये अधिनियम के अनुसार, बिहार में म्युनिसिपैलिटी के चुनाव अक्तूबर 1923 में शुरू हुए। प्रान्तीय कांग्रेस समिति के निर्णय के अनुसार कांग्रेस प्रत्याशियों ने चुनाव लड़े और उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। फलस्वरूप मजहरुल हक 28 जून, 1924 को सारन जिला बोर्ड के प्रथम निर्वाचित अध्यक्ष बने।

लगभग इसी समय बिहार सरकार ने एक लेखा-परीक्षा विधेयक (ऑडिट बिल) पेश किया। इस विधेयक द्वारा सरकारी लेखा-परीक्षकों

को यह अधिकार दिये जाने का प्रावधान था कि वे जिला बोर्डों द्वारा किये गये कुछ खर्चों की वैधता की जांच करें और सम्बन्धित अधिकारी या सदस्य को गलत ढंग से स्वीकृत की गयी राशियों को वापस करने के आदेश दें। इससे, स्वभावतः, प्रान्त भर में बोर्डों के सदस्यों में भारी हलचल मच गयी। इस विधेयक पर तथा बोर्डों से सम्बन्धित कुछ अन्य मामलों पर विचार करने के लिए पटना में एक सम्मेलन हुआ। मजहरुल हक इसकी अध्यक्षता करने वाले थे, परन्तु वे अचानक बीमार हो गये और डा० राजेन्द्र प्रसाद ने उनका स्थान ग्रहण किया। सम्मेलन ने, जिसमें जिला बोर्डों के बहुसंख्यक प्रतिनिधियों ने भाग लिया, विधेयक की कड़ी आलोचना की।

मजहरुल हक 27 जुलाई, 1927 तक सारन जिला बोर्ड के अध्यक्ष रहे। उनके अध्यक्षत्व काल में, बोर्ड ने जिले में निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा के लिए एक योजना तैयार की। पहले 1911 में, गोखले के शिक्षा-विधेयक का समर्थन करते हुए, हक ने निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा पर बल दिया था और इस प्रयोजन के लिए शिक्षा-संघ (एज्युकेशन लीग) बनाने का सुझाव दिया था। अब चूंकि वे अपने विचारों को ठोस आकार देने की स्थिति में थे इसलिए उन्होंने उपर्युक्त योजना को बोर्ड से पास कराया और सरकार से भी उसके लिए स्वीकृति ले ली। परन्तु वित्तीय कठिनाइयों के कारण योजना पूरी तरह क्रियान्वित न हो सकी। फिर भी देश में सारन पहला जिला था, जिसके कुछ भागों में निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा दी जाती थी।

हक ने जिले में एक छोटी रेल चलाने के लिए भी 'मैसर्स मार्टिन ऐंड बर्न' से व्यवस्था की थी, परन्तु यह महत्वपूर्ण योजना भी धनाभाव के कारण खटाई में पड़ गयी। सरकार के उच्च, किन्तु अमित्र, अधिकारियों ने जिला बोर्ड के अध्यक्ष के रूप में हक के सत्यनिष्ठ एवं निष्पक्ष कार्य-निष्पादन की प्रभूत सराहना की। एक गोपनीय सरकारी रिपोर्ट में लिखा है कि अध्यक्ष बनने के बाद भी, हक जिले में राजनीतिक सभायें करते रहे, परन्तु जब वे बोर्ड के अध्यक्ष के रूप में निर्णय लेते थे, चाहे वह राजनीति मामलों पर ही क्यों न हो, उनके विवेक पर इस

बात का कोई असर नहीं पड़ता था। 19 मई, 1925 को पाक्षिक गोपनीय रिपोर्ट में, जो भारत सरकार को भेजी गयी थी, निम्नांकित घटना का उल्लेख है। अप्रैल के मध्य में एक साधु जिसे राजद्रोह के लिए दो वर्ष के सपरिश्रम कारावास का दंड दिया गया था, जेल से छोड़ा गया। सारन के जिला बोर्ड, ने आयरलैंड की तरह, विदेशी नौकरशाही के इस शिकार का स्वागताभिनन्दन करने का निश्चय किया। परन्तु अध्यक्ष मजहरुल हक ने, स्वराज्यवादी होते हुए भी, प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया तथा इस अवसर के लिए बोर्ड की कार का इस्तेमाल करने की अनुमति देने से इन्कार कर दिया। रिपोर्ट के अन्त में कहा गया कि हक का आचरण उनके पद के दायित्व की भावना से अनुशासित था। तिरहुत डिवीजन के अध्यक्ष (चेयरमैन) जे० जे० ह्विटटी ने भी बोर्ड के कार्यों का उच्च चरित्र और सदाचरण के साथ चलाने के लिया हक की प्रशंसा की। उसने लिखा, "मौलवी मजहरुल हक ने अच्छा काम किया है और बोर्ड को, जिसके सदस्य कभी-कभी अपने राजनीतिक विचारों को अपनी साधारण बुद्धि के प्रवाह के बह जाने देते हैं, नियन्त्रण में रखा है।"

नवम्बर 1926 में, हक बिहार विधान परिषद के चुनाव में खड़े हुए, परन्तु हिन्दुओं और मुसलमानों के सम्मिलित विरोध के कारण हार गए। हिन्दुओं ने तो उन्हें अपना नेता ही नहीं माना और मुसलमानों ने इसलिए विरोध किया कि उनके विचार हिन्दू-समर्थक बताए जाते थे। जिस व्यक्ति ने अपने जीवन का अधिकांश भाग हिन्दू-मुस्लिम एकता के संवर्धन में लगा दिया, उसके लिए यह 'आघात सबसे अधिक क्रूर' था। लगभग इसी समय उनके ज्येष्ठ पुत्र हसन मजहरुल हक की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गयी, जिससे उनका दुःख और भी बढ़ गया। इन दोनों घटनाओं ने उन्हें तोड़कर रख दिया और वे सक्रिय राजनीति से हट गए। कांग्रेस के 1927 के वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता के लिए हक के नाम पर सक्रियता से विचार हो रहा था, परन्तु उन्होंने एक सार्वजनिक वक्तव्य निकाल कर प्रार्थना की कि उनके नाम पर विचार न किया जाए।

अगस्त 1926 में मौलाना आजाद द्वारा उनको लिखे गए एक पत्र[1] के प्रकाशित पाठ से स्पष्ट है कि आजाद इस बात को ठीक समझते थे कि अगले बारह महीनों में कांग्रेस को एकमात्र हिन्दू-मुस्लिम एकता का काम ही करना चाहिए और उन्हें विश्वास था कि कांग्रेस की अध्यक्षता के लिए सबसे योग्य व्यक्ति हक़ हैं और वे ही इस महत्वपूर्ण कार्य को चला सकते हैं। परन्तु बहुत मनाए जाने पर और इतने महत्वपूर्ण मित्र द्वारा खास जोर दिए जाने पर भी वे एकांतवास छोड़ देने पर राजी न हुए।

आशियाना

हक़ ने अपने जीवन के कतिपय अन्तिम वर्ष जो एक प्रकार के अपकर्ष के वर्ष कहे जा सकते हैं अपने गांव के घर आशियाना (नीड) में, जो सीवान के दक्षिण में 13 कि. मी. की दूरी पर ग्राम फरीदपुर में था, बिताए। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, उनकी बहन एक निकटवर्ती ग्राम अन्दार के ज़मीदार को ब्याही थी और जब वह विधवा हुई तो हक़ उसके पास रहने के उद्देश्य से छपरा चले गए। उसी समय उन्होंने फरीदपुर में एक बड़ा-सा भूखंड खरीदा। उस भूखंड पर उन्होंने एक बगीचा लगाया और एक बंगला बनवाया जिसका नाम उन्होंने आशियाना रखा। उन्हें अपना नया मकान और उसका ग्रामीण वातावरण बहुत पसन्द था। उन्हें बागवानी का बहुत शौक था और उन्होंने बाग में विभिन्न किस्मों के गुलाब लगाए थे। तीन वर्ष के सूखे के बाद जब वर्षा हुई तो उन्होंने काको (जिला गया) में रह रहे अपने घनिष्ठ मित्र फखरुद्दीन को 8 अगस्त, 1929 को एक पत्र[2] लिखा जिसमें आनन्द विभोर होकर उन्होंने आशियाना के सुन्दर बाग का वर्णन करते हुए उन्हें वहां आने के लिए आमन्त्रित किया ताकि दोनों साथ-साथ वहां हरे-भरे बाग में प्राकृतिक शोभा का आनन्द ले सकें।

फरीदपुर नाम का एक गांव बंगाल में भी था इसलिए उनके पत्र अक्सर उसी गांव में पहुंच जाते थे। 5 अक्तूबर, 1929 को अपने एक मित्र को लिखे गए पत्र में इसका उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा कि मैंने

1. आघे, एस० आर० "मेसेज आफ आशियाना", छपरा, 1962 पृ: 75-76

2. यह पत्र डा० एस० एम० हसनेन, रीडर, उर्दू विभाग मगध विश्वविद्यालय, गया के पास है, जो फखरुद्दीन मुहम्मद के संबन्धी हैं।

ASHIYANAH
P O ANDAR
Dr. SARAN

۵ اکتوبر ۲۹ء

پیارے شمسی

چار پانچ دن ہوئے کہ تمہارا خط آیا تھا۔ مگر ترجمہ نہ آیا۔ اکر رہی کہ کہیں ڈاکخانہ سے غائب تو نہیں ہوا مگر خدا خدا کرکے کل ترجمہ بھی ملا۔ آپ جانتے ہیں کہ کیوں دیر ہوئی۔ یہ لفافہ غلط پتہ کی وجہ سے فرید پور بنگال کی سیر کرتا ہوا میرے پاس پہونچا۔ اس کے قبل بھی ایسے واقعات گزر چکے ہیں۔ اسوجہ سے میں نے فرید پورکو اپنے پتہ سے خارج کردیا ہے۔ اسکی جگہ پر میں نے آشیانہ کا لفظ رکھدیا ہے۔ یہ پتہ جو اس خط کے اوپر ہے بہت کافی ہے۔ انگلستان اور آسٹریلیا اور تمام ھندوستان ہے اسی نشانی پر خطوط آتے ہیں کبھی گم نہیں ہوتے۔

بھئی میں نے ترجمہ کو ابھی سرسری نظر سے دیکھ لیا ہے۔ شائد نظر ڈالنے کے لئے کچھ دن لگینگے مگر اتنا ضرور کہونگا کہ میرے نزدیک ترجمہ اچھا معلوم ہوتا ہے۔ خدا جزائے خیر دے۔ اپنی آخری رائے کچھ دنوں کے بعد لکھونگا۔ آج کل بمبئی‌کرانل کے لئے ایک مضمون ساردھا ایکٹ کی موافقت میں لکھرہا ہوں خدا کرے ختم ہو جائے۔ معلوم نہیں آپ اس قانون کے موافق ہیں یا مخالف۔ مولویوں نے ایک عجیب ہربونگ مچارکھی ہے۔ کہتے ہیں کہ یہ قانون شریعت کے مخالف ہے۔ میری سمجھ میں نہیں آتا کہ کس بات میں مخالف ہے۔ قطع پر اوروح‌زانی بھی تو شریعت کے مخالف ہے۔ پھر اس پر کیوں نہیں صدائے احتجاج بلند کی جاتی۔ والسلام۔

تمہارا دوست

مظہرالحق

अपने पते से गांव का नाम निकाल दिया है। इसलिए अब आप उस पते पर भेजा करें जो लेटर-पैड के ऊपर मुद्रित है—"आशियाना, डाकखाना अन्दार 'जिला सारन"। हक ने यह भी बताया कि आस्ट्रेलिया, इग्लैंड और देश के सभी भागों से भेजे गए पत्र जिन पर इस प्रकार पता लिखा होता है मुझे मिल जाते है और कभी दूसरी जगह नही पहुंचते।

इस अवधि में ब्रह्मज्ञान और अध्यात्मवाद में हक की रुचि बहुत बढ़ गयी। वे एनी बीसेन्ट के ग्रन्थो, विशेष रूप से उनके गीता के अनुवाद, को बड़ी लगन से पढते थे। वे बोस्टन, यू० एस० ए० से प्रकाशित "स्प्रिरिच्वेलिस्ट' भी पढ़ते थे और कुछ पत्रों को अध्यात्मविद्या पर लेख भेजा करते थे। ऐसे ही एक लेख में उन्होंने सातवीं शताब्दी ए० एच० (14 वी शताब्दी ए० डी०) के प्रसिद्ध इतिहासकार और भाष्यकार अब्दुल लतीफ खातिब बगदादी का उल्लेख कर दिया। इस लेख को पढ़ कर किसी ने मौलाना आजाद को लिखा कि खातिब बगदादी के विषय में जो लिखा गया है उस पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है। इस प्रश्न के उत्तर मे आजाद ने हक को एक व्यक्तिगत पत्र[1] लिखा जिसमें उन्होंने खातिब की जीवनी और कृतियों के बारे मे पूर्ण और सही विवरण दिया। इस पत्र से प्रकट होता है कि यद्यपि आजाद हक की बहुत इज्जत करते थे परन्तु वे अध्यात्मवाद में विशेष रूप से उसके उस भाग में जो परलोक विद्या की सीमा में आता था उनके नए उत्साह को पसन्द नही करते थे।

अक्सर हक अध्यात्मविद्या के विषय पर अपने कुछ घनिष्ठ मित्रों के साथ विचार विनिमय किया करते थे। अपने 8 अगस्त, 1929 के पत्र मे जो ऊपर उद्धृत है उन्होने अपने मित्र को यह भी लिखा कि मैं आपको एक पुस्तक 'इज लाइफ दी एंड' (क्या मृत्यु अन्त है) भेज रहा हूं जो अमरीका मे प्रकाशित हुई है और कहा कि आप इस पर अपनी राय लिख कर भेजिए। वे प्रेतात्माओं संबंधी बैठकों में भी दिलचस्पी लेने

---

[1]. आधे पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० 78 से 79

ASHIYANAH
P O ANDAR
Dr. SARAN
۵ اکتوبر ۲۹ء

پیارے شمسی

چار پانچ دن ہوئے کہ تمہارا خط آیا تھا۔ مگر ترجمہ نہ آیا۔ فکر رہی کہ کہیں ڈاکخانہ سے غائب تو نہیں ہوا مگر خدا خدا کرکے کل ترجمہ بھی ملا۔ آپ جانتے ہیں کہ کیوں دیر ہوئی۔ یہ لفافہ غلط پتہ کی وجہ سے فرید پور بنگال کی سیر کرتا ہوا میرے پاس پہونچا۔ اس کے قبل بھی ایسے واقعات گزر چکے ہیں۔ اسوجہ سے میں نے فرید پورکو اپنے پتہ سے خارج کردیا ہے۔ اسکی جگہ پر میں نے آشیانہ کا لفظ رکھدیا ہے۔ یہ پتہ جو اس خط کے اوپر ہے بہت کافی ہے۔ انگلستان اور آسٹریلیا اور تمام ہندوستان سے اسی نشانی پر خطوط آتے ہیں کبھی گم نہیں ہوتے۔

بھئی میں نے ترجمہ کو ابھی سرسری نظر سے دیکھ لیا ہے۔ غائر نظر ڈالنے کے لئے کچھ دن لگینگے مگر اتنا ضرور کہونگا کہ میرے نزدیک ترجمہ اچھا معلوم ہوتا ہے۔ خدا جزائے خیر دے۔ اپنی آخری رائے کچھ دنوں کے بعد لکھونگا۔ آج کل بمبئی کرانکل کے لئے ایک مضمون ساردا ایکٹ کی موافقت میں لکھرہا ہوں خدا کرے ختم ہو جائے۔ معلوم نہیں آپ اس قانون کے موافق ہیں یا مخالف۔ مولویوں نے ایک عجیب ہربونگ مچارکھی ہے۔ کہتے ہیں کہ یہ قانون شریعت کے مخالف ہے۔ میری سمجھ میں نہیں آتا کہ کس بات میں مخالف ہے۔ قطع بر اوروحزانی بھی تو شریعت کے مخالف ہے۔ پھر اس پر کیوں نہیں صدائے احتجاج بلند کی جاتی۔ والسلام۔

تمہارا دوست
مظہرالحق

अपने पते से गांव का नाम निकाल दिया है। इसलिए अब आप उस पते पर भेजा करें जो लेटर-पैड के ऊपर मुद्रित है—"आशियाना, डाकखाना अन्दार 'जिला सारन"। हक ने यह भी बताया कि आस्ट्रेलिया, इग्लैंड और देश के सभी भागों से भेजे गए पत्र जिन पर इस प्रकार पता लिखा होता है मुझे मिल जाते है और कभी दूसरी जगह नहीं पहुंचते।

इस अवधि में ब्रह्मज्ञान और अध्यात्मवाद में हक की रुचि बहुत बढ़ गयी। वे एनी बीसेन्ट के ग्रन्थो, विशेष रूप से उनके गीता के अनुवाद, को बड़ी लगन से पढते थे। वे बोस्टन, यू० एस० ए० से प्रकाशित "स्प्रिरिच्वेलिस्ट' भी पढते थे ओर कुछ पत्रों को अध्यात्मविद्या पर लेख भेजा करते थे। ऐसे ही एक लेख में उन्होने सातवीं शताब्दी ए० एच० (14 वी शताब्दी ए० डी०) के प्रसिद्ध इतिहासकार और भाष्यकार अब्दुल लतीफ खातिब बगदादी का उल्लेख कर दिया। इस लेख को पढ़ कर किसी ने मौलाना आजाद को लिखा कि खातिब बगदादी के विषय में जो लिखा गया है उस पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है। इस प्रश्न के उत्तर में आजाद ने हक को एक व्यक्तिगत पत्र[1] लिखा जिसमें उन्होंने खातिब की जीवनी और कृतियो के बारे मे पूरा और सही विवरण दिया। इस पत्र से प्रकट होता है कि यद्यपि आजाद हक की बहुत इज्जत करते थे परन्तु वे अध्यात्मवाद में विशेष रूप से उसके उस भाग में जो परलोक विद्या की सीमा में आता था उनके नए उत्साह को पसन्द नही करते थे।

अक्सर हक अध्यात्मविद्या के विषय पर अपने कुछ घनिष्ठ मित्रों के साथ विचार विनिमय किया करते थे। अपने 8 अगस्त, 1929 के पत्र मे जो ऊपर उद्धत है उन्होंने अपने मित्र को यह भी लिखा कि मैं आपको एक पुस्तक 'इज लाइफ दी ऐंड' (क्या मृत्यु अन्त है) भेज रहा हूं जो अमरीका में प्रकाशित हुई है और कहा कि आप इस पर अपनी राय लिख कर भेजिए। वे प्रेतात्माओं संबंधी बैठकों में भी दिलचस्पी लेने

1. आघे, पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० 78 से 79

लगे और बताया जाता है कि उन्होंने मद्रास के के० डी० ऋषि को, जो प्रेतात्माओं को बुलाने की विद्या में निपुण माने जाते थे, आमन्त्रित किया था।

इसके साथ ही अपने जीवन की सन्ध्या में भी, हक सार्वजनिक धर्मार्थ कार्यों में रुचि लेते रहे। 1927 में उनके जन्मस्थान बाहपुरा ग्राम के निवासियों ने एक मदरसा स्थापित किया। जब संगठनकर्ता लोग हक के पास सहायतार्थ गए तो उन्होंने मदरसे के लिए अपना गांव वाला घर दान में दे दिया तथा घर का स्वामित्व एक लिखित दस्तावेज द्वारा ट्रस्टियों को हस्तान्तरित कर दिया।[1] मृत्यु के ठीक तीन महीने पहले उन्होंने एक महत्वपूर्ण सामाजिक सुधार के पक्ष में, जिसका उन्होंने अपने आरंभिक वर्षों में जोरदार समर्थन किया था, अपनी शक्तिशाली लेखनी उठायी। 5 अक्तूबर, 1929 के उपर्युक्त पत्र से प्रकट होता है कि वे शारदा विवाह अधिनियम के समर्थन में एक लेख 'बम्बई क्रानिकल' के लिए लिख रहे थे। हक ने अपने मित्र को बताया कि मौलवियों ने इस आधार पर अधिनियम के खिलाफ शोर मचाया कि वह शरियत के खिलाफ है। परन्तु उन्हें इस बात से आश्चर्य था कि मौलवी लोग उस समय चुप क्यों रहे जब ब्रिटिश सरकार ने अपराधों के लिए कुछ प्रकार के दंडों (जैसे चोरी के लिए हाथ काट देना, मिलावट के लिए पत्थर मार कर मार देना आदि) को, जो शरियत द्वारा अनुमेय है, समाप्त किया था। 1929 के अन्त में हक ने अपनी पत्नी और छोटे पुत्र हुसैन मजहरुल हक के साथ दिल्ली जाने की योजना बनाई थी।[2] शायद वे हुसैन को जामिया मिलिया, दिल्ली, में भी भर्ती करना चाहते थे। इस से पहले जनवरी 1929 में, वे मौलाना आजाद का लिख चुके थे कि वे इस सम्बन्ध में डा० जाकिर हुसैन से बात कर लें जो, उस समय शेखुल जामिया थे। मालूम होता है हुसैन मजहरुल हक, जामिया में भर्ती

1. इस संबंध में हक द्वारा लिखे गए पत्र और हस्तान्तरण पत्र की प्रतिलिपि डा० यूसुफ खुर्शीदी प्रवक्ता, उर्दू विभाग, पटना विश्वविद्यालय के पास है, जो एक ट्रस्टी के संबंधी हैं।

2. 8 अगस्त, 1929 का उपर्युक्त पत्र, तथा पार्श्वोपरिवर्तन पुस्तक, पृ० 77।

हो गया था परन्तु यह बात नहीं है कि हक भी उसके साथ दिल्ली गए थे।

अन्त कुछ अधिक तेजी से और अकस्मात आ गया। 27 दिसम्बर, 1929 को उन्हें पक्षाघात हुआ और चन्द दिनों की बीमारी के बाद 2 जनवरी, 1930 को उनका प्राणान्त हो गया। उन्हें आशियाना के अहाते में दफनाया गया। उनकी कब्र पर एक पटिया लगी है जिस पर पवित्र कुरान (अध्याय 39, आयत 73, अध्याय 89, आयत 27-8) से निम्नांकित उपर्युक्त उद्धरण उनके नाम तथा जन्म और मरण की तिथियों के साथ दिया गया है।

بسم اللہ الرحمن الرحیم

سلام علیکم طبتم ناد خلوها خلدین—یا یتھاالنفس المطمئنہ

ارجعی الی ربکہ راضیتہ مرضیتہ—

شیخ مظہرالحق، تاریخ ولادت ١٣ شعبان ١٢٨٢ھ

ولد شیخ احمداللہ، تاریخ وفات یکم شعبان ١٣٤٨ھ

उसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है: "करुणानिधि, दयालु अल्लाह के नाम पर, तुम्हें शान्ति मिले। तुमने अच्छे काम किए हैं। तुम यहां (स्वर्ग में) प्रवेश करो और यहीं रहो। हे आत्मा, तू (स्वयं) खुश होती हुई और उस (अल्लाह) को भी खुश करती हुई, (पूर्ण) शान्ति और सन्तोष में अपने मालिक के पास वापस आ जा।

शेख मजहरुल हक वल्द शेख अहमदुल्ला

जन्मतिथि : शाबान 14, 1282 ए० एच०

मरण तिथि : शाबान 1, 1348 ए० एच०

महात्मा गांधी ने बेगम मजहरुल हक को जो सादा-सा किन्तु हृदय-स्पर्शी शोक सन्देश भेजा, वह उनकी क्षति एवं शोक की सच्ची भावना को ही प्रकट नहीं करता, अपितु हक के जीवन और कार्यों का यथोचित

एवं संक्षिप्त मूल्यांकन भी प्रस्तुत करता है। महात्मा गांधी ने लिखा, "मजहरुल हक एक महान देशभक्त, एक अच्छे मुसलमान और एक दार्शनिक थे। वे आनन्द और विलास की वस्तुओं के शौकीन थे, परन्तु जब असहयोग आया, तो उन्होंने वे उसी तरह फेंक दीं, जिस प्रकार हम खाल को अवाञ्छित पपड़ी को उतार कर फेंक देते हैं। वे फकीरी जीवन के भी उतने ही शौकीन हो गये, जितने राजसी जीवन के थे। हमारे अन्तः कलहों से दुखी होकर वे एकान्त में रहने लगे और ऐसी अनदेखी सेवायें करने लगे जिन्हें वे कर सकते थे तथा सब की भलाई के लिए प्रार्थना करने लगे। वे भाषण और कार्य दोनों में निर्भय थे। पटना के समीप सदाकत आश्रम उन्हीं के रचनात्मक श्रम का फल है। यद्यपि वे उतने दिन आश्रम में नहीं रहे, जितने दिन रहना चाहते थे, परन्तु उनकी आश्रम की कल्पना ने विद्यापीठ के लिए स्थायी स्थान पाना सम्भव बना दिया। अब भी यह दोनों सम्प्रदायों को एक दूसरे से जोड़ने में सीमेंट का काम कर सकता है। ऐसे व्यक्ति का वियोग हर समय खलेगा और देश के इतिहास की इस घड़ी में तो और भी अधिक खलेगा।"

5 जनवरी, 1930 के 'सर्चलाइट' ने एक लम्बा निधन-समाचार छापा, जिसमें दिवंगत नेता की जीवन-वृत्ति एवं सेवाओं का वर्णन किया गया। समाचार में कहा गया : "मि० हक वस्तुतः सार्वजनिक जीवन से अलग हो गये थे और निम्नकोटि के लोग जिस प्रसिद्धि के लिये सदा लालायित रहते हैं, उससे वे बचते थे। वे निवृत्ति का जीवन बिता रहे थे, परन्तु इस एकान्तवास में भी वे सदा प्रेरणा और प्रकाश के स्रोत बने रहे। ···उनका ग्राम निवास 'आशियाना'·· जहां वे रहते थे, अनेक राजनीतिक एवं आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिए वस्तुतः तीर्थ स्थान बन गया था। ··· मि० हक अत्यन्त नीतिवान थे और उनका झुकाव अध्यात्म की ओर था। अपने चरित्र की इसी विशेषता के कारण वे उस अवस्था में सक्रिय सार्वजनिक जीवन से विरत हो गये जब बहुत से लोग अपने यश के लिए लड़ते होते हैं तथा अपने नाम एवं प्रसिद्धि के लिए झगड़ते एवं संघर्ष करते हैं। ···· मि० हक ने वह चीज अपने

सम्प्रदाय को कभी नहीं दी, जो सम्पूर्ण देश के लिए थी तथा उनकी समस्त बुद्धि और समस्त शक्ति मातृभूमि की सेवा के लिए समर्पित थी। फिर भी अपने सम्प्रदाय और धर्म के लिए उनकी सेवायें कम महत्वपूर्ण न थी। ··· मि० हक राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष प्रत्येक अवस्था में से गुजरे और ख्याति प्राप्त की। ······जब महान असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ तो उन्होंने यह ही न जाना कि लड़खड़ाना या विफल होना किसे कहते है। ···उन्होंने एक आश्रम स्थापित किया, जिसका नाम उन्होंने महात्मा गांधी के प्रसिद्ध सत्याग्रह आश्रम के नाम पर सदाकत आश्रम रखा, जहां बाद में, राष्ट्रीय महाविद्यालय और बिहार विद्यापीठ जो आन्दोलन के शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम को चलाने के लिए शुरू किये गये थे, स्थापित किये गये। ··आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने अपना एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला, जिसका नाम 'दी मदरलैंड' था। ऐसा था वह व्यक्ति, जो अभी-अभी दिवंगत हुआ है···ऐसा व्यक्ति, जिसके स्थान की पूर्ति आसानी से न हो सकेगी।"

मूल्यांकन

उन्नीसवीं शताब्दी में बड़े-बड़े सुधार आन्दोलन हुए, जिन्होंने आधुनिक भारत के आविर्भाव के लिए मार्ग प्रशस्त किया। भारतीय मुसलमान भी आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया से प्रभावित हुए। सैयद अहमद ने उन्हें पश्चिमी विचारों और शिक्षा को आत्मसात करने तथा अंग्रेजी राज की वास्तविकता को स्वीकार करने के एक नये और चुनौतीपूर्ण मार्ग पर चलने को कहा।

यद्यपि बिहार में वहाबी आन्दोलन अब भी तेजी पर था, फिर भी वहां सर सैयद के आन्दोलन का प्रभाव पड़े बिना न रहा। जिस समय सर सैयद ने वैज्ञानिक समाज (साइंटिफिक सोसायटी) की स्थापना की, लगभग उसी समय एक अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त मुसलमान इमदाद अली ने बिहार में वैसी ही संस्था बनायी। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि 1880 के दशक में स्थानीय मुसलमान शिष्टवर्ग ने, जिसमें सादीपुर पटना शहर, के वहाबी परिवार के भी कुछ लोग थे, अलीगढ़ कालजियेट स्कूल के सिद्धान्त पर, स्कूल स्थापित करने में सक्रिय रुचि ली। मजहरुल का जीवन और कार्य बिहार के मुसलमानों में इस नये, अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त वर्ग के उदय का प्रतिनिधित्व करते हैं।

मजहरुल हक के सार्वजनिक और राजनीतिक क्रियाकलाप तीन विभिन्न स्तरों पर हुए—स्थानीय, प्रान्तीय और राष्ट्रीय। इसके अलावा एक छोटा सा सर्व-इस्लामवादी कार्यक्रम भी था। सरकारी नौकरी से इस्तीफा देने के बाद, हक, कुछ व्यक्तिगत कारणों से छपरा में रहने लगे। उनका सार्वजनिक जीवन, 1903 में, उनके सारन म्युनिसिपेलिटी के उपाध्यक्ष चुने जाने के साथ शुरू हुआ। इस रूप में उनके द्वारा किये गये कार्यों

के बारे मे अधिक जानकारी नही है। परन्तु सार्वजनिक कार्यों मे पदार्पण उन्होने सारन म्युनिसिपेलिटी में ही किया तथा बाद में, जब वे व्यापक राजनीति क्रियाकलाप से निवृत्त हुए, तब भी वे इसी संस्था मे अध्यक्ष बन कर लौट आये। दशक के समाप्त होते-होते, हक छपरा से पटना चले गये और इसके साथ ही उनकी गतिविधिया एक बार प्रान्तीय और राष्ट्रीय स्तर तक पहुंच गयी।

बिहार को पृथक प्रान्त बनाने के लिए राजनीतिक आन्दोलन जोर पकड रहा था और हक ने बिहार प्रान्तीय सम्मेलन मे, जिसने आन्दोलन को गति प्रदान की, महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। अपने प्रमुख समकालीनों अली इमाम और हसन इमाम के साथ एक संयुक्त हिन्दू-मुस्लिम राजनीतिक मोर्चा बनाने के लिए हक ने सख्त परिश्रम किया और बिहार का पृथक प्रान्त बनाने की माग की। इसी समय राजनीतिक अलगाव के बीज भी भारतीय मुसलमानों के एक वर्ग मे बोये जा रहे थे तथा सरकार ने पृथक निर्वाचन का विवादास्पद सिद्धान्त प्रस्तुत कर दिया था। हक इस घटना को सम्पूर्ण देश के लिए ही नही, स्वयं मुसलमानो के लिए भी खतरनाक समझते थे । उन्होने तगडे विरोध के बावजूद इसका साहस के साथ मुकाबला किया। वे पूरी तरह सफल तो नही हुए, परन्तु इस सकट की घडी मे, समान राजनीतिक और आर्थिक हितो के आधार पर, हिन्दुओ और मुसलमानो का एक संयुक्त राजनीतिक मोर्चा बनाने के लिए उन्होने जो काम किया उसका महत्व कम नही है। उनके काम के इस पहलू पर अभी तक समुचित ध्यान नही दिया गया और न सराहना की गयी। परन्तु उनके कुछ समकालीनो ने इसके महत्व को समझा। एक गुमनाम 'बंगाली' ने 24 अगस्त, 1922, के 'इंगलिशमैन' मे लिखा कि हक "भारतीय राष्ट्रीय राजनीति मे 1909 या 1910 तब चमके, जब मुस्लिम लीग[1] वार्षिक अधिवेशन के अध्यक्ष की हैसियत से उन्होने अपने सहधर्मियों के लिए एक नयी नीति निर्धारित की तथा उनसे पृथक और साम्प्रदायिक राजनीति के सभी दुराग्रहों को

1 यह गलती मालूम पड़ती है। मुस्लिम हक ने मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता 1915 में की थी।

निश्चित रूप से त्यागने का आग्रह किया। .... वास्तव में यह नये हिन्दू-मुस्लिम मनोभाव की शुरुआत थी। यह बड़े महत्व की बात है कि मि० मजहरुल हक ने एकमात्र और नितान्त रूप से इन दोनों महान राजनीतिक समुदायों के राजनीतिक और आर्थिक हितों की समानता के आधार पर एकता का यह महल खड़ा करने की कोशिश की।" यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अभी तक हक आदर्श रूप से उदार और नरम विचार वाले राजनीतिक नेता थे। अधिसंख्य कांग्रेसियों की भांति उनका भी राजनीतिक लक्ष्य ब्रिटिश शासन की समाप्ति न होकर, उत्तरदायित्व पूर्ण स्वशासन की प्राप्ति था।

ज्यों ही यूरोप के ऊपर अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज मलिन हुआ और तुर्की के विरुद्ध यूरोपीय शक्तियों की आक्रामक चालें बढ़ी, हक की गतिविधियों ने नया मोड़ ले लिया। राजनीतिक चेतना वाले अधिसंख्य मुसलमानों की भांति हक को भी तुर्की की चिन्ता सताने लगी। मौलाना अबुल कलाम आजाद के साथ उनके सम्पर्क ने उनकी चिन्ता को उत्कट भावना में बदल दिया और उन्होंने तुर्की के लिए समर्थन जुटाने तथा धन इकट्ठा करने के लिए विहार और बंगाल भर में विस्तृत दौरे किये। कानपुर मस्जिद केस (1913), बैरिस्टर के रूप में उन्हें व्यावसायिक ख्याति और राजनीतिक महत्व प्रदान करने के साथ ही, भारतीय मुसलमानों में से कुछ प्रमुख सर्व-इस्लामवादियों के सम्पर्क में भी ले आया। प्रथम विश्व-युद्ध से ठीक पहले उनकी तुर्की-यात्रा तथा प्रमुख तुर्क नेताओं के साथ उनकी वार्ता आमतौर से अज्ञात ही रही है, परन्तु यह उनके जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना है और उनके जीवन की संक्षिप्त किन्तु महत्व-पूर्ण सर्व-इस्लामवादी अन्तः कथा है। कुछ भारतीय राष्ट्रवादियों एवं तुर्क नेताओं के मध्य सहयोग के लिए आरम्भिक किन्तु विफलित प्रयत्नों में उन्होंने प्रमुख भाग लिया, यह सहयोग प्रसिद्ध खिलाफत आन्दोलन का पूर्वरूप था।

खिलाफत और असहयोग आन्दोलन का समय हक के जीवन का सर्वोत्तम समय है। तुर्की के समर्थन में वे कुछ समय पहले से ही काम कर रहे थे। अब इसमें असहयोग के लिए महात्मा गांधी का नवीन किन्तु

हलचल मचाने वाला आह्वान और जुड़ गया और उसने हक की हस्ती को निनादित कर दिया। यह निरा एक दूसरा राजनीतिक आन्दोलन न था; इसमें नीति और त्याग की प्रबल अन्तर्ध्वनियाँ थीं, जो हक के मन को अति आकर्षित करती थीं। उन्होंने इस आह्वान का, केवल राजनीतिक, बाह्य स्तर पर ही नहीं, अपितु आन्तरिक, आध्यात्मिक स्तर पर भी अनुसरण किया। उनमें जो यह उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ, उस पर अनेक समकालीन व्यक्तियों और समाचार पत्रों ने टिप्पणियाँ कीं। उपर्युक्त 'बंगाली' ने लिखा: "मैंने मि० मजहरुल हक को असहयोग से पहले भी देखा था और जाना था। वे बांकीपुर में अत्यन्त टिप-टाप यूरोपीय ढंग से रहते थे, जो उनकी अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा और उस समय बांकीपुर विधिज्ञवर्ग के नेता के रूप में उनके स्थान के अनुरूप ही था। उनमें मुस्लिम अभिजात वर्ग की नजाकतों और उच्च वर्ग के अंग्रेजों की विलासमयी आदतों का मिश्रण था। ··· मैंने उन्हें परिवर्तन के बाद भी देखा। ···· महात्मा गांधी के कुछ अन्य प्रमुख सहयोगियों की भाँति, मजहरुल हक ने भी अपना व्यवसाय छोड़ दिया, परन्तु उनके मामले में यह परिवर्तन वास्तव में और अक्षरशः राजसी जीवन को धर्मात्मा फकीर के जीवन में बदलना था। 'इंडिपेंडेंट' ने लिखा कि मजहरुल हक कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के बाद कलकत्ता से लौटे, अपनी अच्छी खासी प्रेक्टिस छोड़ी, पहनावे में परिवर्तन किया, दाढ़ी बढ़ा ली, और 'गंगा तट पर तपोवन' में चले गये, जिसे सदाकत आश्रम कहते थे। तब से वे फकीर बने हुए हैं। एक दूसरे समाचार पत्र 'दी सर्चेन्ट' ने लिखा कि जब देश में असहयोग का बिगुल बजा तो उन्होंने (हक ने) जो विलासिता में पले थे और जिन्हें लक्ष्मी का वरदान था, एक सच्चे फकीर का जीवन अपना लिया।'

साथ ही, असहयोग आन्दोलन की सफलता में, हक ने काफी सक्रिय योग दिया। उन्होंने अपना ध्यान तीन मुख्य लक्ष्यों पर केन्द्रित किया राष्ट्रीय विद्यालयों एवं महाविद्यालयों का गठन, साम्प्रदायिक सौहार्द बढ़ाना तथा सरकारी संस्थाओं और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार। प्रथम लक्ष्य के सम्बन्ध में उनकी गतिविधियों—सदाकत आश्रम की स्थापना

ग्रौर विहार विद्यापीठ का कार्यचालन, भले ही वह ग्रधिक दिन नहीं चला, ध्यान देने योग्य हैं। वे उनकी संगठन-पटुता के भी परिचायक हैं।

साम्प्रदायिक ऐक्य संवर्धन हक़ का दूसरा बड़ा योगदान था। उन्होंने ग्रारम्भिक ग्रवस्था में ही इस तथ्य के विशिष्ट महत्व को समझ लिया ग्रौर इस विषय पर ग्रपने विचार ग्रपने 1911 के ग्रध्यक्षीय भाषण में बड़ी स्पष्टता से प्रकट किये थे। उनके लिए यह बिल्कुल स्पष्ट था कि "इस समस्या का समाधान ही भारत की मुक्ति सिद्ध होगा।" उनके दिमाग में एक ग्रादर्श ग्रौर एक उद्देश्य को लेकर, ··· शांति-पूर्ण प्रगति के मार्ग पर ग्रागे बढ़ते हुए, साढ़े इकत्तीस करोड़ मानव प्राणियों की तस्वीर थी। वे यह भी देखते थे कि इस तस्वीर का उल्टा पहलू 'जिसमें 7 करोड़ लोग मुख्य समूह से ग्रलग होकर विपरीत दिशा में चलने लगेंगे, इतना भयावह होगा कि सोचा भी नहीं जा सकता।' यह ग्राशंका सत्य सिद्ध हुई, जिससे उन्हें चिरस्थायी पश्चाताप हुग्रा ग्रौर भ्रांति भी दूर हो गयी। महात्मा गांधी की तरह हक़ भी इस महान लक्ष्य को प्राप्त करने में ग्रसफल रहे; इतना ग्रवश्य है कि इसके लिए उन्हें उतना मूल्य नहीं चुकाना पड़ा जितना गांधीजी ने चुकाया था।

सरकारी संस्थाग्रों ग्रौर विदेशी वस्तुग्रों का बहिष्कार हक़ के लिए काम का केवल नाकारात्मक कार्यक्रम न था। ग्रसहयोग का महान नैतिक मूल्य इस बात में था कि इसने करोड़ों साधारण व्यक्तियों के हृदयों में ग्रात्म-त्याग की भावना पैदा कर दी थी। इसने उनमें ग्रात्म-विश्वास का भाव भी जगाया था ग्रौर विदेशी शासकों का 'ग्रनिष्टकारी भय' भगाया था। विदेशी वस्तुग्रों का बहिष्कार ग्रान्दोलन से प्रभावित होकर लोग उस 'झूठी क्षमकारी विलासिता' का मोह त्यागने लगे, जो 'हमारी सांस्कृतिक विजय का सबसे बड़ा प्रतीक' थी। ग्रन्त में इसी से देश ग्रात्म-निर्भर हो सकता था ग्रौर यही 'स्वराज्य' का ग्रसली ग्रर्थ था।

इस ग्रवधि में हक़ की गतिविधियों की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी, उनका पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश। एक स्वतन्त्र राष्ट्रीय समाचार-पत्र की ग्रनिवार्य ग्रावश्यकता समझ कर, हक़ ने 'दी मदरलैंड' की स्थापना

की और उसे चलाया और इस प्रकार यथाशक्ति अपना अंशदान किया। 'दी मदरलैंड' शीघ्र ही असहयोग आन्दोलन का प्रमुखपत्र बन गया। उसका जीवन तो छोटा ही रहा, किन्तु उसने निर्भीक और विवेकपूर्ण पत्रकारिता का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया, जिसक अनेक समकालीनों ने, 1910 के प्रेस अधिनियम के अधीन इस पत्र पर सरकार के प्रथम आक्रमण के समय, भूरि-भूरि प्रशंसा की। निःसंदेह पत्र एक साधन था, परन्तु सच्चे गांधीवादी की भांति हक इस बात में बड़े सावधान थे कि साध्य की पवित्रता के अनुरूप ही साधन की पवित्रता भी होनी चाहिए।

राजनीतिज्ञ के रूप में हक की एक और विशेषता यह थी कि वे अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का ज्ञान रखते थे और उनमे गहरी रुचि लेते थे । 'दी मदरलैंड' के पृष्ठ इसके साक्षी हैं। विशेष रूप से, इंग्लैंड और उसके भू०पू० उपनिवेश अमरीका के मध्य मधुर सम्बन्धों पर उनकी पैनी दृष्टि और इंग्लैंड-तथा स्वतन्त्र भारत के मध्य वैसे ही सम्बन्धों की उनकी कल्पना यह बताती है कि व्यापक ऐतिहासिक प्रवृत्तियों की उन्हें कितनी जानकारी थी। दक्षिण अफ्रीका की भेदभावपूर्ण नीतियों के शिकार भारतीयों के साथ उनकी सहानुभूति—जो उन्होंने 1911 में प्रकट की थी तथा आयरलैंड के स्वतन्त्रता आन्दोलन में उनकी दिलचस्पी और उसकी प्रशंसा भी, अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के प्रति उनकी असाधारण सजगता को प्रकट करती है।

इसके साथ ही, समर्पित और अनुशासित कांग्रेसी होते हुए भी हक एक प्रबल, स्वतन्त्र व्यक्तिगत विचार रखते थे । कांग्रेस के कार्यक्रम के साथ वस्तुतः उनका पूर्ण तादात्मय था; फिर भी उन्होंने संगठन से वैमत्य का तथा यदि "हमारी अन्तरात्मा जनता और देश की भलाई के लिए नितान्त आवश्यक समझे" तो उसकी आलोचना का अपना अधिकार सुरक्षित रखा। यह आरक्षण खाली नाममात्र का आरक्षण न था; असहयोग आन्दोलन के दौरान हक ने निर्भय होकर इस अधिकार का प्रयोग किया।

हक की राजनीतिक गतिविधियों की सबसे उल्लेखनीय विशेषता उनकी नैतिकता और विरक्तिप्रवणता थी। उनमें नैतिक मूल्यों की गहरी पैठ

थी, जिसे वह सदा प्रकट भी करते थे। राजनीति उनके लिए शक्ति संचय का नहीं अपितु आत्मशुद्धि के लिए सेवा का एक साधन थी। असहयोग, जो उनकी राजनीतिक गतिविधियों में सर्वोपरि था, एक मात्र राजनीतिक आन्दोलन ही न था, उनके लिए वह "मानव जाति की नैतिक बुराइयों का इलाज था।" इसी प्रकार उन्होंने घोषणा की थी कि 'दी मदरलैंड' का सन्देश राजनीतिक के बजाय धार्मिक और नैतिक अधिक होगा। परन्तु उनकी धार्मिकता का अर्थ केवल अपने धर्म का रूढ़िवादी आदर नहीं, अपितु व्यापक नैतिक मूल्यों के प्रति समर्पण का भाव था। इस सम्बन्ध में वे महात्मा गांधी से बहुत प्रभावित हुए थे। वस्तुतः महात्मा गांधी की छाप उन पर इतनी जबरदस्त थी कि उसी के कारण उन्हें 'फकीर' की लोकप्रिय और स्नेहपूर्ण उपाधि मिली, जो बिल्कुल मौजूं थी। गांधीजी ने एक बार कहा था कि भारत के उन्नयन के लिए काम करने के वास्ते 'फकीरों' और संन्यासियों की आवश्यकता है, और यह विचार हक को बहुत पसन्द आया था। राजनीति में 'वैराग्य' के रोचक किन्तु प्रत्यक्षतः विरोधी मिश्रण का विवेचन करते हुए हक ने एक बार लिखा: "वैराग्य का अर्थ है अन्य सभी लक्ष्यों को छोड़ कर केवल एक लक्ष्य से बंधना, ... राजनीति में वैराग्य का अर्थ होगा संसार की सभी वस्तुओं को छोड़ कर केवल अपने देश के हित साधन में लगना।"[1] महात्मा गांधी का भी यही अभिप्राय था। हक ने बताया कि राजनीति में फकीर और संन्यासी वे महान आत्मा वाले व्यक्ति हैं, जिन्होंने अपने देश की खातिर अपना सब कुछ त्याग दिया है। जीवन में उनका एक मात्र उद्देश्य है सभ्यता की तुलना में अपनी मातृभूमि को ऊंचा उठाना, उसे विदेशी अतिक्रमण से मुक्त कराना, उसकी खोयी हुई स्वतन्त्रता को पुनः प्राप्त करना तथा पृथ्वी के समस्त राष्ट्रों से उसका आदर कराना। भारत की पवित्र वेदी पर वे सब कुछ न्योछावर करने, सब कुछ चढ़ाने के लिए तैयार रहते हैं। ... वे मातृभूमि के चुनीदा हैं.... वे देश के चुनीदा हैं।"[2] हक स्वयं इस चुनीदा श्रेणी के थे और वे बखूबी 'बिहार के गांधी' माने जा सकते हैं।

---

1. 'दी मदरलैंड', 9 जून, 1922
2. वही

घटनाओं का कालक्रम

22 दिसंबर	1866	बहपुरा, जिला पटना में जन्म।
	1886	मैट्रिकुलेशन परीक्षा उत्तीर्ण।
	1886-87	पटना कालेज और कैनिंग कालेज, लखनऊ में अध्ययन
मई	1888	जहाज द्वारा इंग्लैंड के लिए प्रस्थान (सितंबर में पहुंचे और कानून की पढ़ाई शुरू की)।
	1891	बैरिस्टर बने, घर लौटे।
	1892	पहला विवाह।
	1892	संयुक्त प्रान्त में न्यायिक सेवा में नियुक्त।
अप्रैल	1896	सरकारी सेवा छोड़ी।
	1897	छपरा विधिवर्ग में शामिल। जिले में अकाल के समय सहायता कार्य का संगठन किया।
	1903-6	छपरा म्युनिसिपैलिटी के उपाध्यक्ष निर्वाचित।
	1906	दूसरा विवाह (पहली पत्नी का देहान्त 1902 में हुआ)।
दिसंबर	1906	ढाका में प्रमुख मुस्लिम नेताओं की बैठक में शामिल, जिसके बाद मुस्लिम लीग बनी। उन्होंने बिहार में भी

		लीग बनायी और उसके प्रान्तीय सचिव बने।
	1908	पटना चले गये।
	1908	विहार प्रान्तीय सम्मेलन के महासचिव।
	1909	विहार प्रान्तीय सम्मेलन उपाध्यक्ष।
16 दिसंबर	1909	इम्पीरियल विधान परिषद के सदस्य निर्वाचित।
नवम्बर	1911	विहार प्रान्तीय सम्मेलन के अध्यक्ष।
दिसंबर	1912	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 27वें अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष।
	1913	कानपुर मस्जिद केस में बचाव पक्ष के वकील के रूप में काम किया।
18 अप्रैल	1914	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप मे जहाज द्वारा इंग्लैंड के लिए प्रस्थान।
जून	1914	इंग्लैंड से वापसी में कुस्तुनतुनिया पहुंचे।
27 जून	1914	तुर्की के सुल्तान से भेंट (अन्य प्रमुख तुर्क नेताओं से भी मिले)।
	1915	बम्बई में मुस्लिम लीग अधिवेशन के लिए अध्यक्ष निर्वाचित।
16 दिसंबर	1916	होमरूल लीग की विहार प्रान्तीय शाखा के अध्यक्ष निर्वाचित।
नवम्बर	1917	भारत मंत्री एडविन एस० माटेग्यु से मिले।

	1917	तीसरा विवाह (दूसरी पत्नी के देहान्त 1912 में हुआ)।
	1919	असहयोग आन्दोलन में शामिल (खिलाफत आन्दोलन के लिए पहले ही उत्साह से काम कर रहे थे)।
नवम्बर-दिसम्बर	1920	सदाकत आश्रम की स्थापना, जिसमें कुछ समय तक बिहार विद्यापीठ रहा। उसके बाद से यह बिहार प्रान्तीय कांग्रेस समिति का मुख्यालय रहा है।
	1921	बिहार विद्यापीठ के कुलपति नियुक्त।
सितम्बर	1921	अंग्रेजी साप्ताहिक 'दी मदरलैंड' की स्थापना (एक छापाखाना भी स्थापित किया)।
26 जुलाई	1922	'दी मदरलैंड' में प्रकाशित कुछ लेखों के लिए गिरफ्तार।
दिसम्बर	1922	सक्रिय राजनीति से (अलग 'दी मदरलैंड' के प्रबन्ध एवं सम्पादकत्व से भी हटे)।
	1923-26	सारन जिला बोर्ड के अध्यक्ष।
2 जनवरी	1930	फरीदपुर, जिला सारन में अपने गांव के घर पर देहान्त।